CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

वाराणसीस्थ आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठाचार्य

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य-राम प्रपन्नाम्नायी।

योगीन्द्र प्रवर्तित विश्राम द्वारकास्थ श्री कोशलमठ संचालित।

ज.गु. श्री रामानन्दाचार्य-पीठ

सचित्र धार्मिक मासिक

कार्यालय ॐ आचार्यपीठ श्री कोशलेन्द्रमठ सरखेजरोड
पो० पालडी अहमदाबाद ३८०००७

संरक्षक 卐 शेठ श्री अमरशी कुरजी मजिठिया

सम्पादक 卐 जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी

सहसम्पादक 卐 पं. श्री शरच्चन्द्र शास्त्री

व्यवस्थापक 卐 म. म. स्वामी रामावतारदासजी (रत्न)

प्रकाशक 卐 स्वामी सीतारामाचार्य

क्रमातग समीक्षा

तथा

सिंहस्थ-१९९२

वर्ष १४ विक्रमाब्द २०४९ अङ्क ७

श्रीरामानन्दाब्द ६९२ सितम्बर १९९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोकवाणी

परमादरणीय परमपूज्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामीजी, सादर दण्डवत् । विदित हो कि मैंने अयोध्या के सर्वमान्य वशिष्ट तुल्य पं.श्री अखिलेश्वरदासजी महाराज को सिद्धान्त चन्द्रिका आदि के विषय में पत्र लिखा था तो उनका उत्तर उनके अयोध्यातः लिखित पत्र दि० ९।३।९२ में इस प्रकार था —"आपका पत्र मिला । समाचार ज्ञात भया । भइया क्या कहा जाय, आजकल बहुधालोग स्वतन्त्र हो गये हैं । जो जिसके मन में आता है, वही कहने और करने लगता है किसी को दण्ड का भय नहीं रह गया है । खाना पीना शादी सम्बन्ध संतानोत्पादन आदि सभी व्यवहार में सब स्वतन्त्र है । श्रीरामभद्राचार्यजी ने तो स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा कर दी. श्रीबोधायनाचार्यजी तक समस्त श्री सम्प्रदायाचार्यों को अज्ञानी सिद्धांत विहीन लिख मारा । अंधे को कुछ सूझाता ही नहीं । श्री भगवानदासजी ने रामानन्द दर्शन समीक्षा में क्या क्या लिख मारा, वे ही जाने, मैं तो कोई लेख नही दिया, मैं उनसे परिचित भी नहीं हूं और लिखने का अभ्यास भी मुझे नहीं है । मेरा कभी भी यह सिद्धांत नहीं रहा । हमारा सम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय से भिन्न है विशिष्टाद्वैत सिद्धांत है । चिदचिद्विशिष्ट श्रीरामजी ही परात्पर ब्रह्म और सर्वावतारी है । इति शुभम् । इसीप्रकार म. पं श्रीरामकिशोर दासजी शास्त्री (श्रीराम मंदिर छाणी) जी ने अपने पत्र दि० २२।७।९२ में समीक्षा से अधिक समीक्षाकार की ही प्रशंसा लिखी है जिसे लिखना आत्मप्रशंसा के कारण उचित नहीं है । समीक्षा के विषय में उन्होंने लिखा है—समीक्षा बेजोड है उस विषय में प्रशंसा करना शब्दों द्वारा सम्भव नहीं है । यह सम्प्रदाय के आनेवाली पीढी के लिये इतिहास के समान अमर है । इत्यादि इसी प्रकार अखिल भारतीय श्रीरामानन्द संघ के अध्यक्ष डा० अयोध्यादासजी महाराज ने अपने पत्र दि०२४।७।९२ में लिखा है—"आपकी लेखनीयुद्ध आगे के इतिहास में लिपिबद्ध रहेगा । भलेही आपको आश्वासन भरा पोस्टकार्ड कोई न भेजे, लेकिन सम्प्रदाय प्रेमियों की सहानुभूति आपके साथ जुडी है । साधुओं को पत्र लिखने का अभ्यास नहीं है । इसलिए बेचारे नहीं लिखते हैं । रामभद्राचार्य और उनके अनुयायी स्वयं को ब्रह्म समझते हैं । आज ही श्री नृत्यगोपालदासजी महाराज से वार्ता

शे. टा. न. ३ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[stamp]

१।३ में कहा गया है कि "समस्त श्रुतियों एवं इतिहास पुराणों के सहित समस्त दर्शनों के द्वारा ब्रह्म का ठीक ठीक व्याख्यान नहीं किया जा सकता। इसलिए उसकी अनिर्वचनीयता हैं।" श्लोक में 'निर्वक्तुं' शब्द है और टीका में 'व्याख्यान' लिखा है। गिर+वेद व्यक्तयां वाचि। अच्छ वदति। अङ्ग-लिविभागेन स्पष्टोच्चारणे इत्यर्थः। अच्छेत्यव्ययमभिमुखये। अभिमुखं वदति। +तुमुन् निर्वक्तुम।' और वि (निग्रहे नियोगे च तथैव पाद पूरणे। निश्चयेऽसहने हेतावव्याप्ति विनि-योगयोः। इषदर्थे परिभवे शुद्धावालम्बनेऽपि च। विज्ञाने-मे०।।) +ख्या (ख्या प्रकथने)= (प्र प्रकर्षे गताद्यर्थेऽपि मे, कथ वाक्य प्रबन्धे)+ल्युट्=कथन। इस प्रकार दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। फिर इसके अव्यवहित पूर्व श्लोक की टीका में लिखा है-'अनि-र्वचनीय अर्थात् जिसको वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। जिसकी समीक्षा 'होलीतरङ्ग' प्रहसन निवन्ध में की जा चुकी है। इस प्रकार सिद्धान्त चन्द्रिका में इस सम्बन्ध में व्याघात दोष है। पुनः इससे सिद्ध होता है कि श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण व्याख्यान नहीं हो सकते है और व्याख्यान नहीं है अथवा ठीक ठीक व्याख्यान नहीं है, बेठीक और भ्रान्त व्याख्यान हैं, विपर्यय हैं, भ्रामक और अप्रामाणिक हैं। 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।" यह गीता वचन ईश्वर का ठीक ठीक व्याख्यान नहीं है, बेठीक व्या-ख्यान है, भ्रान्त व्याख्यान है, परन्तु सिद्धान्त चन्द्रिका ब्रह्म के ठीक ठीक निर्वचन या ठीक ठीक व्याख्यान है,-ऐसा वे ही कह और मान सकते हैं। जब वेदादि ही ठीक ठीक निर्वचन या ठीक ठीक व्याख्यान नहीं हैं, तब सिद्धान्त चन्द्रिका कैसे? जिस सिद्धान्त चन्द्रिका को वे स्वयं ठीक ठीक निर्वचन नहीं बना रहे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, वह वे ठीक ग्रन्थ सिद्धान्त (साधयति निष्पन्नो भवति इति सिद्धान्तः) पद को कैसे प्राप्त कर सकता है और इसकी संज्ञा सिद्धान्त चन्द्रिका कैसे हो सकती है ? ग्रन्थकार ने 'निर्वचन' का एक भी दृष्टान्त नहीं दिया है कि उनके मत में कौन और कहाँ निर्वाचन है तथा किस विषय या वस्तु का निर्वचन है । दृष्टान्त के अभाव में उनका कथन अप्रामाणिक है । यदि वे दृष्टान्त नहीं देते है, तब उनका पक्ष ही असिद्ध हो जाता है और यदि दृष्टान्त देते हैं तो अनिर्वाचनीय वाद ही खण्डित हो जाता है । अतः उभयतः असमञ्जस है ।

१४ में 'यतो वाचो निवर्तन्ते०' से श्रीराम को अनिर्वाच्य सिद्ध करने का प्रयास किया गया है । परन्तु 'वाक्यं द्विविधं लौकिकं वैदिकञ्चेति । वैदिकं च ईश्वरोक्तत्वात सर्वं प्रमाणम ।' से स्पष्ट है कि 'यतो वाचो निवर्तन्ते०' में वाणी की अक्षमता केवल लौकिक वचन के सम्बन्ध में है, ईश्वर की वाणी रूप वेद वचन में नहीं । ईश्वर पूर्ण सक्षम और सर्वज्ञ है । इसलिए उसका वचन भी पूर्णसक्षम एवं अभ्रान्त है । पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । अरथ अमित अति आखर थोरे, स्वल्पं वृत्ति विचित्रमर्थमतुमम' वाले वेद वचन ब्रह्म के निर्वाचन में अभ्रान्त और पूर्ण सक्षम है । 'यतो वाचो निवर्तन्ते०' का तात्पर्य लौकिक वचन से ही है, 'सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्' वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।।" वाले सर्व विषयक तथा 'अज्ञात ज्ञापको वेद.' प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते' एतं विदन्ति वेदेन तस्मात्वेदस्य वेदता ।।' वाले वेद वचनों से नहीं । वह तो पूर्णज्ञ और सर्वज्ञ वचन है ।

१५ में ग्रन्थकार कहते हैं कि वागिन्द्रिय यानी वाणी को उपनिषद् वेत्ता बिद्वान जड मानते हैं और नित्य वर्तमान पर ब्रह्म श्रीराम चेतन घन हैं । अतः जड के द्वारा चेतन का सम्यक्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निरूपण कैसे किया जा सकता है। इसलिए ब्रह्म की अनिर्वचनीयता युक्तियुक्त है। परन्तु ग्रन्थकार का यह कथन और यह अनुमान सर्वथा भ्रान्त है। यहां जडत्व हेतु से जो साध्य को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है वह ग्रन्थकार के मत से ही अव्याप्त या व्याप्यत्वासिद्ध हेतु है। उन्हें यह कहना और सिद्ध करना चाहिए था कि जड के द्वारा किसी का (जड या चेतन का) भी निरूपण नहीं किया जा सकता। तभी इस हेतु से साध्य सिद्ध होता। परन्तु उन्होंने 'जड के द्वारा जड का तो निरूपण हो सकता है, चेतन का नहीं'—ऐसाभी सिद्ध नहीं किया है। प्रत्युत कहा है कि—'जड के द्वारा चेतन का सम्यक् निरूपण कैसे हो सकता है' जिसका तात्पर्य है कि जड के द्वारा जड का तो सम्यक् निरूपण हो सकता है, और जड़ के द्वारा चेतन का भी निरूपण हो सकता है, परन्तु सामान्य और आंशिक निरूपण हो सकता है, विशुष और पूर्ण निरूपण नहीं। परन्तु जब निरूपण हो सकता है और जड का सम्यक् निरूपण हो सकता है तो, चेतन का भी सम्यक् निरूपण कैसे नहीं हो सकता है। लेखक भूल गये कि जड या चेतन किसी का भी निरूपण वाणी के द्वारा ही होता है किसी अन्य के द्वारा नहीं उनका कथन व्याघत एवं प्रमाण शास्त्र विरुद्ध है। जड वाणीके द्वारा चेतन के निरूपण को असमञ्जस पूर्ण बतलाने वाले ग्रन्थकार को समझना चाहिए कि शरीर जड है किन्तु वह चेतन आत्मा के सान्निध्य या सम्पर्क में चेतन का कार्य करता है, पुनः वाणी (मन्त्र) चेतन का कार्य (जासु वश विधि हरि हर सुर सर्वा) रोग निवारण, वशीकरण, मारण मोहन उच्चाटन आदि कार्य कैसे करता है। पुनः वेद वाणी तो 'वाग्वृत्ताश्च वेदाः—मु०' ब्रह्म का वाग्वृत्त है। ब्रह्मके वाक् को ग्रन्थकार जडमानते हैं या चेतन यदि चेतन मानते हैं तो जडत्वापत्ति भ्रान्त है और यदि जड मानते हैं तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी जैसा कि कहा जा चुका है जड होने पर भी चेतन का निरूपण अबाध है। ग्रन्थकार की यह आपत्ति विज्ञान और वेद विज्ञान ज्ञान रहित वार्ता है। वेद कहते हैं–'अनृतात सत्यमुपैमि-शु.य. ।' हम इस नश्वर जड शरीर (शरीर माद्यं खलु धर्म साधनं) के द्वारा दिव्य शाश्वत शरीर को प्राप्त करते हैं। अक्रोध से क्रोध को जीतते हैं, अकाम से काम को जीतते हैं, तब जड वाणी द्वारा चेतन ब्रह्म का निरूपण उन्हें क्यों अनर्गल मालूम पड रहा है ? ग्रन्थकार का तर्क नहीं कुतर्क है, हेतु नहीं हेत्वाभास है और प्रमाण शास्त्र विरुद्ध तथा दुराग्रह पूर्ण हैं।

११६ में कहा गया है कि "श्रीराघव समस्त संसार को केवल एक ही पुत्र भाव से मानते हैं। अतः द्वैत का अभाव होने से ईश्वर अद्वैत है।" यह कथन और अनुमान दोनो ही पूर्ण भ्रान्त है। श्रीरामजी केवल पुत्र भाव से ही नहीं मानते है, अपितु रक्षा, बन्धु, भार्या, रक्ष्य, शेष, भोग्य, दास, शिष्य आदि अनेक विध सम्बन्ध भाव मानते हैं, पुनः यदि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार कुछ क्षणों के लिये एक ही पुत्र भाव ही मान लिया जाय, तोभी किसी भी सम्बन्ध में या पुत्र सम्बन्ध में भी सम्बन्ध और द्वैत (भेद) ही सिद्ध होता है, तादात्म्य या अद्वैत (अभेद) नहीं। 'मम पुत्रः' होता है 'अहं पुत्रः' नहीं।

११७ में कहा गया है कि 'अनिर्वचनीय शब्द अद्वैत का विशेषण है, क्योंकि पर ब्रह्म में ही अनिर्वचनीयता स्वभाव सिद्ध है। अतः जैसे व्यावर्त्य नहीं होने पर भी नीलं नभः यानि नीला आकाश ऐसा कहा जाता है, यद्यपि वहां श्वेत या पीला आकाश नहीं है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म तत्त्व के अतिरिक्त कोई तत्त्व न होने पर भी अनिर्वचनीयता को उसका स्वभाविक गुण मानकर विशेषण दिया जाता है।" ग्रन्थकार का यह कथन भी भ्रान्त है 'अनिर्वचनीय' शब्द तो अभाष है। जिस विषय का अभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है, वह अभाव का प्रतियोगी कहलाता है और जिस आधार में अभाव होता है, वह अभाव का अनुयोगी कहलाता है। अनिर्वचनीय शब्द में प्रतियोगी पद निर्वचनीय' है और अनुयोगी ब्रह्म। इसी प्रकार यहां अनिर्वचनीय को अद्वैत का विशेषण कह कर दोनों में विशेषण विशेष्य सम्बन्ध कहा गया है। यहां यह सम्बन्ध अद्वैत में स्थापित किया गया है, अतः वह सम्बन्ध'' अनुयोगी है और यह सम्बन्ध अनिर्वचनीयता को लेकर स्थापित किया गया है, इसलिये वह सम्बन्ध का प्रतियोगी है। परन्तु जब अनुयोगी ब्रह्म में प्रतियोगी निर्वचनीयता का अभाव ही नहीं है, प्रत्युत भाव है, तब तो यह अनिर्वचनीयता विशेषण नहीं बनता है और जब सम्बन्ध का प्रतियोगी विशेषण ही नहीं बनता है, तब इस सम्बन्ध का अनुयोगी विशेष्य अद्वैत कैसे बनेगा ? पर ब्रह्म में अनिर्वचनीयता को स्वभाव सिद्ध कहना भी अप्रामाणिक और भ्रान्त है और जब हेतु ही अप्रामाणिक और भ्रान्त है साध्य (अनिर्वचनीय शब्द अद्वैत का विशेषण है) स्वतः भ्रान्त और अप्रामाणिक है। फिर अतः पद से निकाला निष्कर्ष भी स्वतः भ्रान्त है दृष्टान्त वाक्य-जैसे व्यावर्त्य नहीं होने पर भी नीला आकाश ऐसा कहा जाता है, यद्यपि वहां श्वेत या पीला आकाश नहीं है' भी भ्रान्त है। 'नीलं नभः' प्रतीति औपाधिक (उप समीप वर्त्तिनि स्वसमानाधिकरणे स्वधर्मं व्याप्ति आदधाति बोधयतीति स्वकीयं रूपम् इति उपाधिः। जपाकुसुमादि साधारणः।) है। प्रातः और सायंकाल सूर्य की उपाधि से आकाश लाल प्रतीत होता है। चक्षु की अशक्ति के कारण आकाश का अति दूर देश नीला मालूम पडता है, बादल में सूर्य किरण के विश्लेषण से सप्तरङ्गी इन्द्र धनुष के रूप में प्रतीत होता है। शब्दतः तो 'नभ' का अर्थ यास्क ने–''नभ आदित्यो भवति नेता भासाम्, ज्योतिषां प्रणयः। अपि वा भन एव स्याद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विपरीत:, न न भातीति वा । एतेन द्यौर्व्याख्याता ॥'' जिसमें यह भी कहा गया है कि भन शब्द को विपरीत करने पर 'नभ' शब्द बनता है । भन का अर्थ प्रकाश है । अत: नहीं नहीं प्रकाशित होता है अर्थात् प्रकाशित होता है यह नभ का अर्थ है एवं आसमन्ताभावेन काश्यते (काशृ दीप्तौ) इति आकाश:' से कोई व्यावर्तक या व्यावर्त्य क्यों नहीं है । अत: यह दृष्टान्त वचन ही सर्वथा भ्रान्त है । इसी प्रकार ग्रन्थ का उपनय वाक्य 'ठीक उसी प्रकार ब्रह्म तत्त्व के अतिरिक्त कोई तत्त्व न होने पर भी अनिर्वचनीयता को उसका स्वभाविक गुण मानकर विशेषण दिया गय' भी भ्रान्त है । ब्रह्म तत्त्व के अतिरिक्त चित् और अचित् अतिरिक्त तत्त्व कैसे नहीं हैं ? ग्रन्थकार और टीकाकार अतिरिक्त तत्त्व कैसे नहीं है ? यह कैसे मान लिया जाय कि ग्रन्थकार, टीकाकार, अतिरिक्त तत्त्व नहीं हैं, एक ही अद्वैत तत्त्व है, लेखक और श्रीराम एक ही तत्त्व हैं । गोपियों ने उद्धव से पूछा–'अरे खुद ब्रह्म हो के ब्रह्म को उपदेश देते हो' तो उद्धव कुछ भी नहीं कह सके । क्या यही उत्तर देने की अक्षमता वा अज्ञान का नाम ग्रन्थकार अनिर्वचनीयाद्वैत मानते हैं । न्याय शास्त्र तो इसे 'अननुभाषण' निग्रह स्थान मानता है । अननुभाषण का नाम अनिर्वचनीयाद्वैत है । श्लोक का 'सम्भवाच्च स्वभावाच्च नित्यं' कथन भी भ्रान्त एवं ग्रन्थकार के सिद्धान्त विरुद्ध व्याघातक है' ग्रन्थकार 'सम्भव' को प्रमाण ही नहीं मानते हैं यहां सम्भव को प्रमाण रूप में देते हैं । अत: यह उनके सिद्धान्त विरुद्ध एवं व्याघातक है । इसी प्रकार अनिर्वचनीयता को उनका नित्य स्वाभाविक कहना भी भ्रान्त है । गुण द्रव्याश्रित रहता है । अनिर्वचनीयता वाचक निष्ठ धर्म ही हो सकता है. अल्पज्ञता एवं अशक्ति के कारण यह वाच्य परमात्मा निष्ठ नहीं है । तब यह परमात्मा का गुण या स्वाभाविक गुण कैसे कहा जा सकता है । पुन: स्वाभाविक गुण सिद्ध करने के लिये प्रमाण देना चाहिए नहीं तो यह स्वरूपा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्ध होगा। किन्तु यह 'स्वाभावाच्य' हेतु चार्वाक के–'अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथानिलः। केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थिति ॥'' इस स्वभाव वाद का अनुकरण करने वाला है, जो भ्रान्त है। 'स्वभाव वर्णना नैवमवधेर्नियतत्वतः ॥ न्या·कु· ।'' यहां नित्य स्वभाविक गुण सिद्ध करने के लिये जो 'नीलमिवाम्बरम्' दृष्टान्त दिया गया है, वह सर्वप्रथम तो दृष्टान्त पद को ही प्राप्त नहीं करता। क्योंकि दृष्टान्त का लक्षण है– ''लौकिक परीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः–न्या.सू. १।१।२५ ।'' जिसे पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों ही मानते हों वही दृष्टान्त होता है। आकाश का नित्य नीलत्व भले ही ग्रन्थकार मानते हैं, परन्तु उसे सिद्धान्त पक्ष नहीं मानता है। अतः यह दृष्टान्त नहीं कहा जा सकता। पुनः आकाश का नीलत्व यथार्थ नहीं प्रत्युत औपधिक है। पुनः यह औपाधिक भी सर्वकालिक या नित्य नहीं, प्रत्युत कादाचित्क है। कभी नीला तो कभी लाल दिख पडता है। अतः अनित्य है। फिर इस दृष्टान्त से स्वाभाविक गुण कैसे सिद्ध किया जा सकता है।

११८ में 'नान्तः प्रज्ञ' माण्डुक्य श्रुति के सम्बन्ध में 'पूर्वार्धेन विशेषणम्' एवं 'उत्तरार्धेन-विशेष्यम्' कहा गया है, यह भ्रान्त है। यदि श्लोक का पूर्वार्ध का 'नान्तः प्रज्ञम्' आदि विशेषण है, तो उत्तरार्ध का 'अदृष्टम्' आदि भी उसी प्रकार विशेषण ही है और यदि उत्तरार्ध का 'अदृष्टम्' आदि विशेष्य है, तो उसी प्रकार पूर्वार्ध का 'नान्तः प्रज्ञम' आदि भी विशेष्य ही है। अतः श्लोक के पूर्वार्ध को विशेषण एवं उत्तरार्ध को विशेष्य कहना भ्रान्त है।

११९ में 'बृहत्वात्' 'बृम्हणात' एवं ''रमणात्''–इन तीन हेतुओं से श्रीराम को सभी शरीरों में व्यापक पर ब्रह्म श्रुतियों द्वारा गाये जाने की बात कही गयी है–बृहत्वात् बृम्हणात्त्वाक सम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णात् सर्व देहिषु । राम एव पर ब्रह्म श्रुतिभिश्चानुगीयते ॥" यह ग्रन्थकार का सिद्धान्त विरोधी है । क्योंकि इससे सिद्ध होता है कि परब्रह्म राम अनुमान प्रमाण सिद्ध है एवं श्रुतियां भी इन्हें उक्त अनुमान सिद्ध होने के कारण ही परब्रह्म रूप में गाती है । अतः श्रुतियां भी अनुमान अनुगामिनी है । जबकि हमलोग इसके ठीक विपरीत 'प्रत्यक्षेण अनुमित्या वा यस्तूपायो 'न बुध्यते । एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥" को मानते हैं । हमलोग यह मानते हैं कि ब्रह्म अनुमान प्रमाण द्वारा भी सिद्ध है और अनुमान से परे सर्वज्ञ की वाणी वेद द्वारा भी सिद्ध है । इस प्रकार ग्रन्थकार का सिद्धान्त विरुद्ध एवं ग्रन्थकार के विरुद्ध भी है ।

१।१० में कहा गया है कि "ब्रह्म शब्द प्रकृति, ब्रह्मा, वेद एवं ब्राह्मण के अर्थ में गौणी वृत्ति अर्थात् व्यवहार में प्रवृत्त हुआ है और मुख्य वृत्ति से तो केवल श्रीरामरूप अर्थ में ही प्रयुक्त होता है ।" वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः अ.को. ३।२।११४।' के अनुसार ब्रह्म या ब्रह्मन् नपु. के वेद तत्त्व, तप, ब्रह्म (ईश्वर) चार अर्थ और पुल्लिग के ब्राह्मण, ब्रह्मा दो अर्थ होते हैं । गुणात् आगता गौण्यः में ङीप् स्त्री प्रत्यय से गौणी शब्द बनता है । ब्रह्म (ईश्वर) का गुण आने से वेदादि की ब्रह्म संज्ञा बनती है । अतः वह गौणी है । ब्रह्म का गुणनित्य है और गुण तथा गुणी (ब्रह्म) में तादात्म्य होने से कारण कार्य भाव से उनकी ब्रह्म संज्ञा गौणी ही नहीं अपितु शुद्धा है । परन्तु मुख्य वृति होने पर भी श्रीराम से उनका तारतम्य है । क्योंकि वे मात्र 'ब्रह्म' संज्ञक है और श्रीराम 'पर ब्रह्म' संज्ञक । जैसे आत्मा और परमात्मा, ईश्वर और परमेश्वर में तारतम्य है, उसी प्रकार ब्रह्म और परब्रह्म में तारतम्य है । वेदादि मात्र ब्रह्म हैं और श्रीराम परब्रह्म (इति राम पदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते—श्रुतिः) हैं । अतः ब्रह्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द का वेदादि में मुख्य वृत्ति मानने पर हमारे परब्रह्म वादी सिद्धान्त में कोई क्षति नहीं है, प्रत्युत लाभ ही है। यदि इनमें मुख्य वृत्ति नहीं माना जाये तो 'परब्रह्म' शब्द व्यर्थ विशेषण युक्त एतावता व्यर्थ और अनर्थक हो जायगा तथा अनर्गल कहा जायगा। अतः चन्द्रिकाकार का यह कथन श्रीरामानन्द सिद्धान्त विरोधी है।

पुनः रश्मि १ श्लोक-१० में लिखा है कि ब्रह्म शब्द प्रकृतिः ब्रह्मा वेद एवं ब्राह्मण के अर्थ में गौणी वृत्ति अर्थात् व्यवहार में प्रवृत्त हुआ है, मुख्य वृत्ति से तो यह ब्रह्म शब्द रमण कराने वालों में श्रेष्ठ श्रीसीतापति श्रीरामरूप अर्थ के ही वोध के लिये प्रयुक्त होता है।" परन्तु यह कथन भ्रान्त है। ब्रह्म शब्द ब्रह्मा, वेद एवं ब्राह्मण के अर्थ मे गौण वृत्ति (गौणी नाम सादृश्य विशिष्ट लक्षणा–न्या.बो.) नहीं प्रत्युत मुख्य वृत्ति (शक्ति=अस्मात् पदादयमर्थो बोद्धव्यः; इतीश्वर संकेत; शक्ति,) है और 'ब्रह्म तत्त्व तपो वेदे न द्वयोः पुंसि वेधसि–मे.' कोशोक्त अभिधार्थ है। जहां अभिधार्थ का वाध होता है केवल वहीं गौंणी वृत्ति की प्रवृति होती है। ब्रह्म शब्द के वेद, ब्रह्मा आदि अर्थों का वाध नहीं है–कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम् –गो ३।१५'। ब्रह्म शब्द तो 'अन्नं ब्रह्म' 'प्राणं ब्रह्म' आदि में सर्व=व्यवहृत और सामान्य शब्द है श्री सीता पति श्रीराम के लिये तो श्रुति ने स्पष्ट शब्दों में 'इति राम पदे नासौ पर ब्रह्माभिधायते' वाक्य में 'परब्रह्म' पद को प्रधान किया है। यदि ब्रह्म शब्द को भी मुख्य वृति माने तो यह 'पर' उपसर्ग 'अधिपरी अनर्थकौ' के समान अनर्थक हो जायेगा। अतः न तो 'अभिधान कोशतः पदार्थ निश्चयः–का-अ.सू.' आदि के अनुसार ब्रह्म शब्द का वेदादि अर्थ में गौणी वृत्ति है और न सीतापति श्रीराम में मुख्य वृत्ति है, प्रत्युत श्री राम में 'परब्रह्म' शब्द की ही मुख्य वृति श्रुति सिद्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१।११ में कहा गया है– 'यतो भूतानि जायन्ते येन जीवन्ति यत्र ही। प्रलयं यान्ति तद् ब्रह्म व्यापकं प्रकृतेः परम ॥ परन्तु 'सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्तिमामिकाम' कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम ॥ गी. ९।७।'' के अनुसार वस्तुतः सभी भूतानि प्रकृति में ही लय होते हैं और प्रकृति में से ही उत्पन्न होते है। 'यतो भूतानि जायन्ते०'' तैत्तिरीय श्रुति में जो ब्रह्म का लक्षण दिया गया है और ब्रह्मसूत्र– "जन्माद्यस्य यतः–ब्र सू. १।१।२'' जो ब्रह्म का लक्षणसूत्र है प्रकृति के लेश से ही उक्त लक्षण दिया है प्रकृति भिन्न ब्रह्म से नहीं जो चिदचिद विशिष्ट ब्रह्म के अर्थ में है। ब्रह्म प्रकृतेः परम है किन्तु 'यतो वा भूतानि जायन्ते' के प्रकरण में नहीं। ग्रन्थकार द्वारा इन दोनों को एक वाक्य बनाना भ्रान्त है। क्योंकि दोनों की एक वाक्यता नहीं है।

पुनः १ श्लोक ११=में लिखा हैं–''यतो भूतानि जायन्ते येन जीवन्ति ही। प्रलयं यान्ति तद् ब्रह्म व्यापकं प्रकृतेः परम ॥

परन्तु इस श्लोक पूर्वभाग– यतो भूनाति जायन्ते येन जीवन्ति ही प्रलयं यान्ति तद् ब्रह्म व्यापकं तो ठीक है, परन्तु इसके साथ "प्रकृतेः परम'' ठीक नहीं है। क्योंकि भूतों की उत्पत्ति स्थिति और लय प्रकृति (परा अपरा) अंश में ही होता है और चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म के प्रकरण में ही उपरोक्त 'यतो वा भूतानि जायन्ते०' श्रुति कही गयी है, प्रकृति विरहीत ब्रह्म अंश के विषय में नहीं मया ततमिदं, सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाऽहं तेष्ववस्थितः ॥ न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम। भूत भृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगोमहान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय। सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम। कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम ॥ प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात ॥ न च मां तानि कर्माणि निवध्नन्ति धनंजय । उदाशीन वदासीन मसक्तं तेषु कर्मसु ॥ मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम् । हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ गीता ७।४.१०॥ से यह स्पष्ट है । अतः प्रकृतेः परम' पद का अन्वय चिदचिद् विरहित केवल ब्रह्म अंश के साथ ही हो सकता है। यतो वा भूतानि जायन्ते येन जीवन्ति ही प्रलयं यान्ति तद् ब्रह्म व्यापक' अर्थात चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के साथ नहीं। अतः चन्द्रिकाकार का यह श्लोक गलत और श्रुति– "यतोवा इमानिभूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रलयन्त्य भिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति । (तै.उ.७३।१) के शब्द अर्थ और तात्पर्य विरुद्ध है । वहां इस चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के प्रकरण में 'प्रकृतेः परम' शब्द है ही नहीं और हो भी नहीं सकता है । ऐसा कहना विपरीत व्याधात और अनर्गल है । जगत ब्रह्म का परिणाम नहीं प्रत्युत मद्वारक परिणाम है ।

श्लोक १२ की टीका में लिखा है–'सत्यकामः सत्य सङ्कल्प' इत्यादि वचनों से श्रुति में ब्रह्म में सत्यकामत्व सत्यसङ्कलपत्व आदि अनन्त कल्याण गुणगणों का स्थापना करके उस ब्रह्म को सगुण रूप में गाया है तथा पुनः 'अशब्दमस्पर्शम्' इत्यादि वचनों से ब्रह्म में शब्द आदि प्राकृत गुणों का निषेध कहकर उसे निर्गुण भी बतलाया गया है । परन्तु यह टीका सर्वांश में सत्य और अभ्रान्त नहीं है । सर्वप्रथम कल्याण गुण और प्राकृत गुण में वैजात्य या वैपरीत्य नहीं है । अतः एक के भाव से दूसरे का निषेध एवं एक के निषेध से दूसरे का भाव नहीं बनता । प्रत्युत यदि टीकाकार प्राकृतगुण का विपरीत दिव्यगुण (अप्राकृतिक गुण) का प्रयोग कल्याण गुण के स्थान पर करते तो कुछ संगति बैठती भी । वस्तुतः श्रुति में वहां 'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' आदि पुल्लिग में तथा अशब्दम् अस्पर्शम् आदि नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त है । श्रुति विज्ञानानुसार व्यक्त ब्रह्म के लिये पुल्लिग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा अव्यक्त ब्रह्म के लिये नपुंसकलिङ्ग का व्यवहार श्रुतियों में किया गया है। जैसे काष्ठ में अग्नि और खम्भे में नृसिंह अव्यक्त (अप्रकट व्यापक) रहने पर अशब्दम् अस्पर्शम् आदि निर्गुण कहे जा सकते हैं और काष्ठ से प्रकट होने पर अग्नि और खम्भे से प्रकट होने पर नृसिंह (व्यक्तरूप) सत्यकामः सत्य सङ्कल्पः आदि सगुण कहेजायेंगें अतः इस गुण निर्गुण कहे जाने का आधार व्यक्त अव्यक्त रूप है) एवं अचित प्रकृति में ही नपुंसक तथा चेतन ब्रह्म में पुल्लिग का व्यवहार होता है। इस प्रकार चिदचिद्विशिट ब्रह्म में अंशानुसार पुल्लिग, नपुंसक, सगुण निर्गुण का व्यवहार होता है। ब्रह्म का गुण दिव्य एवं कल्याण है।

पुनः ११२ में कहा गया है कि यह श्रुति ने "सत्यकामः सत्य सङ्कल्पः" इत्यादि वचनों से ब्रह्म को सगुण कहा है और अशब्दमस्पर्शम्' आदि में निर्मुण भी कहा है। इसप्रकार श्रीरामानन्द दर्शन के अनुसार ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों ही है।" परन्तु ग्रन्थकार का यह निष्कर्ष सत्य आधार पर भ्रान्त निर्णय है। ग्रन्थकार को यहां ध्यान देना चाहिये कि सत्य कामः सत्य संकल्पः आदि सगुण प्रतिपादक श्रुति शब्द पुल्लिग में प्रयुक्त हैं और ठीक इसके विपरीत "अशब्दम', 'अस्पर्शम्' आदि निर्गुण प्रतिपादक श्रुति शब्द नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त है। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिये कि श्रुति को परब्रह्म श्रीराम सगुण अभीष्ट है। अतः पुल्लिग का प्रयोग है और ब्रह्म (चौदह लोकों और साकेतादि दिव्य धामों से भिन्न देश व्यापक) निर्गुन अभीष्ट है। अतः नपुंसक लिङ्ग का प्रयोग है। परन्तु वहाँ भी निर्गुण का अर्थ गुणशून्य अभीष्ट नहीं हो सकता; प्रत्युत अव्यक्त गुण ही अभीष्ट हो सकता है। ग्रन्थकार निर का अर्थ शून्य नहीं प्रत्युत निःशेष मानते हैं। अतः उनके अनुसार भी निर्गुण का अर्थ निःशेप गुण ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। गुण के निषेध में निर्गुण शब्द ब्रह्म के सम्बन्ध में श्रुति को न अभीष्ट है और नहीं हो ही सकता है। गोपियोंने उद्धव से कहा था जो गुण नाहिन होत कहो गुण कहां से आयो।' कारणाभावे कार्याभावः। अतः कारण ब्रह्म में गुण मानना ही पडेगा और उसे मानना सगुण ही पडेगा, गुणशून्य निर्गुण नहीं। इसी अथ में ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों कहना बन सकता है, नहीं तो असमीचीन और व्याघात पूर्ण होगा। वह गुणयुक्त और गुण रहित दोनों नहीं प्रत्युत व्यक्त गुण और अव्यक्त गुण दोनों युक्त है।

११२३ में सगुण और निर्गुण का जो लक्षण एवं सामञ्जस किया गया है। वह दोनों ही भ्रान्त है। वास्तविकता तो यह है कि परब्रह्म श्रीराम का गुण दिव्य (श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिः– श्री वै.म.भा. ९।२) है प्राकृतिक गुण नहीं। प्राकृतिक गुण विकारी और अनित्य होता है। वे इस प्राकृत गुण से परे त्रिगुणातीत कहे जाते हैं। इसी त्रिगुणातीत को लौकिक दृष्ट्या निर्गुण कहाजाता है। परन्तु चन्द्रिका में लिखा है कि "समस्त कल्याण मय गुणों के आकर भगवान् श्रीराम रूपादि धारण के समय अपने परमानन्द की सृष्टि करने के लिए जब माधुर्य, वात्सल्य, औन्दर्य आदि दिव्यगुणों को प्रकट करते हैं तब उन्हें सगुण कहा जाता है तथा जब ज्ञानी भक्तों के समक्ष अपने ऐश्वर्यात्मक स्वरूप के बोध का वैभव धारण कर अपनी सहज शान्त स्थिति को स्वीकार करके साकेत गोलोक आदि लोकों में अपने समस्त गुणों को समेट कर विराजते है, तब वे निर्गुण कहे जाते हैं।" परन्तु श्रीराम को अवतार काल में सगुण और साकेतादि लोकों में निगुण की बात भ्रान्त और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में मान्य नहीं है। श्रीराम अवतार काल में अर्थात अवतार श्रीराम भी वात्सल्यादि दिव्यगुण पूर्णहै एवं श्रीसाकेत में भी अर्थात् अवतारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीरामजी भी वात्सल्यादि दिव्य गुण पूर्ण हैं। अर्थात् वे नित्य गुण पूर्ण हैं और उनका दिव्य गुण नित्य पूर्ण हैं। वे श्रीसाकेत लोक में अपने परिकर परिच्छेद और नित्य मुक्त भक्तों के साथ नित्य वात्सल्यादि दिव्य गुणों से विराजते हैं और अभीष्ट नित्य आनन्द प्रदान करते हैं और वहां भी सदिव्य गुण एवं अप्राकृतिक गुण रहते हैं। ऐश्वर्य भी गुण ही है एवं सहज शान्त स्थिति में भी सदिव्य गुण रहते हैं. गुण रहित नहीं। 'सत्त्वात् संजायते ज्ञानम्' ज्ञान की स्थिति सत्त्वगुण की स्थिति होने से सगुण ही है, निर्गुण नहीं। अतः चन्द्रिकाकार की यह सगुण निर्गुण व्यवस्था का निरूपण सर्वथा तथ्य विपरीत एवं भ्रान्त है। पुनः यह ग्रन्थकार के अग्रिम श्लोक १।१५ के विरुद्ध भी है। इस श्लोक में यह भी त्रुटि है कि श्लोक में गुणों के सम्बन्ध में दिव्य विशेषण नहीं है, जो भ्रान्त है टीका में इस दिव्य शब्द को देकर 'शेषं टीकया पूरयेत' चरितार्थ किया गया है।

१।१४ में एक ही काल में सगुण एवं निर्गुण दोनों बत लाने के जो भी दृष्टान्त दिये गये हैं। सभी भ्रान्त हैं गुण गुणी निष्ठ होता है, गुणी के कार्य निष्ठ नहीं। वर्षाकाल में मक्का आदि को उत्पन्न कर के पृथ्वी उसकी दृष्टि में सगुण और गेहूं आदि को उत्पन्न न करके उसकी दृष्टि में निर्गुण रहती है की वार्ता भी भ्रान्त और कृषि विज्ञान शून्य वार्ता है। मक्का, गेहूं आदि अन्नों के बीजों को अंकुरित होने एवं फलित होने का गुण बीज निष्ठ है। धान के भी विभिन्न जातियां हैं। एक प्रकार के धान को चाहे किसी मास में बोयें और सिंचन आदि के द्वारा अंकुरित और वर्हित करें। किन्तु वह अग्रहण मास में ही फलित होता है। इसलिये उसे अगहनी धान कहते हैं, दूसरे प्रकार ठीक इसी प्रकार भद्रमास में ही फलित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। इसे भदैया कहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जाति के आम, लीची, आमला, कटहल आदि का फलने का मास अलग निश्चित है। यह जाति निष्ठ या मूल कारण (उपादान कारण) निष्ठ धर्म या गुण है, निमित्त वा सहकारी कारण पृथ्वि, जल, वायु, प्रकाशादि निष्ठ नहीं। अतः एक समय में शाही लीची को पकने और चाइना लिची का नहीं पकने से एक लिची ही की दृष्टि पृथ्वी को सगुण एवं दूसरे लिची की दृष्टि में निर्गुण कहना भ्रान्त है। बारहमासी आम पकता है तो उसकी दृष्टि में सर्वदा सगुण ही होगा। यह सब सिद्धान्त विरुद्ध बाते हैं। गुण वस्तु निष्ठ होता है। दृष्टि निष्ठ नहीं। यदि गुण को दृष्टि मानें तो अन्धे के लिये रूप गुण नहीं होगा। आलू के लिये सूर्य और प्रकाश गुण नहीं होगा। पुनः मरुजल दृष्टिगोचर होने से उसमें गुण होगा। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक से गुण के दृष्टि निष्ठत्व का खण्डन हो कर गुणी निष्ठत्व ही प्रमाणित होता है। अतः चन्द्रिकाकार का दृष्टान्त और निष्कर्ष भ्रान्त है।

१।१५ में कहा गया कि "भगवान् गुणों की कोई अपेक्षा नहीं करते तथापि गुण समवाय यानि नित्य सम्बन्ध से रघुकुल श्रेष्ठ श्रीराम में ही नित्यविराजते हैं, अत एव वात्सल्यादि सद्गुण अपने एक मात्र आश्रय श्रीराम को छोडना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें छोडकर उनका आश्रय हां कहा हैं?" अपेक्षा उसी वस्तु की की जाती है जो उत्तम हो और अपेक्षा वही करता है जिसमें उसका अभाव हो। भगवान् शब्द ही षंडैश्वर्य (भग) वान् है। अतः उसे अभाव नहीं है. फिर अपेक्षा का प्रश्न ही कहां है? पुनः जब गुण समवाय सम्बन्ध से उनमें विराजते हैं, तब वे साकेत में या अवतारी रूप में निर्गुण कैसे? जैसा कि ग्रन्थकारने श्लोक १।१३ में कहा है। पुनः जब वे गुण श्रीराम का आश्रय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोड़ना नहीं चाहती हैं, तब वे गुण चेतन होंगे। क्योंकि इच्छा चेतनाश्रित ही होती है। अतः ग्रन्थकार को इन्हें जड नहीं प्रत्युत चेतन स्वीकार करना पडेगा।

१ श्लोक१६ की टीका में इतर व्यावर्तक 'ही' पद का प्रयोग किया गया है, वह सर्वथा भ्रान्त है और इससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। टीका में लिखा है-"मनुष्य के जैसे आकार वाले भगवान् श्रीराम ही श्रुतियों के अनुसार सम्पूर्ण भूतों के हृदय में निवास करने वाले, सम्पूर्ण जीवों के एक मात्र ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतों के द्वारा आराधनीय पर ब्रह्म ही हैं" यहां पर यह कहना भ्रान्त है कि आराधनीय परब्रह्म ही हैं। आराधनीय पर ब्रह्म ही नहीं. अपितु ब्रह्म और भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक" सत गुरु आदि भी हैं। अतः इस वाक्य खण्ड में 'पर' और 'ही' का प्रयाग भ्रान्त है। इसी प्रकार 'श्री राम ही श्रुतियों के अनुसार सम्पूर्णभूतों हृदय में निवास करने वाले सम्पूर्ण जीवों के एक मात्र ईश्वर' वाक्य भी भ्रान्त है। यहां 'ईश्वर' नहीं, प्रत्युत 'महेश्वर' पद होना चाहिये श्लोक में भी महेश्वर पद ही है। पुनः सम्पूर्ण जीवों के एकमात्र ईश्वर वाक्य खण्ड में 'जीवों' के स्थान पर 'भूतों' पद होना चाहिए क्योंकि वे केवल जीवों के ही महेश्वर नहीं अपितु चराचर के महेश्वर हैं। श्लोक में भी 'सर्वभत महेश्वरम्' पद ही है। इसी प्रकार केवल हृदय में ही निवास करने वाले नहीं हैं। अपितु अन्तर्बहि, सर्वत्र निवास करने वाले हैं :-ईशावास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्यांजगत्' श्लोक में भी सर्वभूत कृतावासं' पद ही है, हृदय पद नहीं। हां उनके निवास का स्थान विशेष हृदय अवश्य है। परन्तु भगवान् हृदय में दो रूपों में निवास करते हैं-एक अव्यक्तरूप में जिसके 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्" "मैं भगवान् अन्यपुरुप (प्रथम पुरुष) तत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद का प्रयोग किया है । और (२) व्यक्त रूप में जिसके लिये-सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम ॥' में भगवान् ने 'अस्मद्' शब्द उत्तम पुरुष का प्रयोग किया है । इसी प्रकार अव्यक्त रूप वाले में 'तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत । तत्प्रसादात्परं शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ कह कर परोक्ष रूप से फल प्रदान की बात कही गई है और व्यक्त रूप वाले में "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" कहकर प्रत्यक्ष फल प्रदान की बात कही गयी है । टीकाकार के हृदय में आराधनीय श्रीराम के निवास से व्यक्तरूप या अव्यक्त रूप इनमें से किस रूप में निवास इष्ट है यह स्पष्ट करना चाहिए था ।

१ श्लोक २० की टीका में भी इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं । टीका में लिखा है 'श्रीराम .... स्वयं श्री अवध में दशरथ कौशल्या के यहां पुत्र रूप से प्रकट रूप से प्रकट होते हैं' यह वाक्य न तो मूल श्लोक में है और न ठीक ही है । श्रीरामजी केवल अवध में ही अवतार नहीं लेते हैं और न केवल दशरथ कौशल्या के यहां ही अवतार लेते हैं और न केवल पुत्ररूप में ही अवतार लेते हैं, प्रत्युत 'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः ।' किसी भी देश में किसी रूप में अवतार लेते हैं । चौवीस प्रसिद्ध अवतार भी ऐसा ही है । इसी प्रकार वे केवल जीवों के ही नियन्ता नहीं अपितु अखिल चराचर विश्व के नियन्ता हैं । टीका में केवल जीवों के नियन्ता लिखना भ्रान्त है । इस प्रकार टीका सर्वथा भ्रान्त मूल श्लोक वाह्य तथा विपरीत भी है । परन्तु इस टीका को देख कर ही ग्रन्थकार ने प्रकाशित किया है एवं लिखा भी है–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"एतस्य ग्रन्थस्य राष्ट्रभाषायां "श्रीनाम्नी व्याख्यां कृत्वा श्रीयम-
वर्धयत् मम स्वसा सुश्री कुमारीगीता देवी इति हेतोः तस्यै अपि
ममाक्षि भूमिकां निभालयन्त्यै प्रकामं धन्यवादान् वितरामि ।"
अत इस टीका को लेखक गृहीत ही कहा जायेगा । अतः पत-
ञ्जलि ने लिखा है–'यो ह्यत्सूत्रं कथयेन्नादो गृहीत' वह यहां
लागू नही माना जायेगा और यदि लागू मानते हैं तो टीकाकार
के साथ ही लेखक भी अप्रामाणिक माने जायेंगे ।

२।२ में कहा गया है कि 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश
अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, प्रकृति, चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण, त्वक्
हस्त, चरण, पायु, उपस्थ, वाणी, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस,
गन्ध इच्छा द्वेष, सुख, दुख, संघात, चेतना, धृति प्राण, अपान,
उदान समान, व्यान तथा चित्त, इन सभों को धारण करना ही
जीवों का जीवन हैं और इसी लिये इन्हें जीव कहा जाता है । पर
मात्मा इन विकारों को धारण नहीं करते यही उनका वैलक्षण्य है ।
परन्तु यह कथन भ्रान्त है । जीव पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश
को धारण नहीं करता प्रत्युत पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ही
जीवों को धारण करते है । इसमें नैयायिकों के 'घृताधारे पात्रं
वा पात्राधारे घृतं इति विवेचनीयम' की परीक्षा की आव
श्यकता है सभी जीव पृथ्वी पर स्थित हैं न कि जीवों पर, मनु-
ष्यादि थलचर जीव पृथिवी पर निवास करते है । मीनादि जल
चर जल में ही निवास करते हैं । मेढक, कच्छप आदि उभयचर
जल तथा पृथिवी दोनों पर निवास करते हैं, नभचर पक्षी आकाश
में विचरण करते है, वायवीय जीव में ही निवास करते हैं ।
प्रहलाद अग्नि में भी निवास किये । अतः पृथिवी आदि ही जीवों
को धारण करते हैं, जीव पृथिवीं आदि को नहीं । पृथिवी सूक्त
वेद में लिखा है–सत्यं वृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं
धारयन्ति" अथर्वः काण्ड १२ सूक्त १ मन्त्र १ और सूक्त का अन्तिम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्त्र है–भूमेमातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम। संविदान। दिवे कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ १२।१।६३ वस्तुतः 'यस्य पृथिवी शरीरम्' श्रुति से पृथिवी (अचित्) ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म ही धारण करते हैं। न्यायाचार्य उदयनाचार्य जी भी न्याय कुसुमाञ्जलि ५।१ में 'धृत्यादेः' हेतु–'धृतीति ब्रह्माण्डादि पतन प्रतिबन्धकीभूत प्रयत्नवदधिष्ठितं धृतिमत्वात वियति विहङ्गमधृत काष्ठवत्। धृतिश्च गुरुत्ववतां पतनाभावः। धृतिर्धारणम्। से ईश्वर को ही पृथिवी जलादि का धारण करने वाला सिद्ध किया है। जीव को पृथिवी आदि को धारण करने की क्षमता ही नहीं है. जैसे असंख्य तारों से अंधकार का नाश नहीं हो सकता। उसी प्रकार असंख्य जीव मिलकर भी पृथिवी को धारण नहीं कर सकता। यतः ग्रन्थकार का यह कथन प्रत्यक्ष और वेद उभय विरुद्ध है। जीव केवल अपने अपने शरीर को ही धारण करता है वह दूसरे के शरीर को धारण नहीं कर सकता। स्त्रियां केवल दश मास ही गर्भ धारण करती है। चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियों को भी सभी जीव धारण नहीं करते। सर्प को श्रोत्र नहीं होता वह चक्षुश्रवा कहा जाता है उसको हस्त पाद भी नहीं होता पशुओं को हस्त नहीं होता इत्यादि। इसलिए जीवों का इन इन्द्रियों को धारण करना लक्षण भी अव्याप्त लक्षण है। न्याय दर्शन के अनुसार-इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानानि आत्मनो लिङ्गम्–न्या.सू.–१।१।१० ॥ तर्क संग्रह दीपिका कार ने लिखा है–सुखाद्याश्रयत्वं जीव लक्षणम्। अतः ग्रन्थकार का कथन सर्वथा भ्रान्त है।

२।३ में कहा गया है कि "जीव अनेक हैं तथा परमात्मा एक है, परमात्मा प्राण और मन से रहित हैं तथा जीव निरन्तर प्राण एवं मन से युक्त है" परन्तु यह कथन भी भ्रान्त हैं। जीव न केवल अनेक है अपितु प्रति शरीर भिन्न भी हैं और बद्ध, मुक्त नित्य प्रकार का भी है। इसी प्रकार एक ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परमात्मा पर व्यूहादि पञ्च प्रकारों का भी है। यह कहना भ्रान्त है कि परमात्मा प्राण और मन से रहित है। श्रुतिने उसे "श्रोतस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति "केन० उ० १।२।। प्राण का प्राण और मन का मन कहा है। यह भी कथन सर्वथा भ्रान्त है कि जीव निरन्तर प्राण एवं मन से युक्त है। श्रुति ने कहा है-'न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुभाश्रितौ। कठो० उ० २।२।५।।, अतः सिद्धान्त चन्द्रिका का उक्त श्लोक श्रुति विरुद्ध और अप्रामाणिक है।

२।४ में कहा है कि 'जीव मायावश है तथा परमात्मा स्वतन्त्र है। ईश्वर सर्व समर्थ है तथा जीव असमर्थ है, और इसकी पुष्टि में मानस की चौपाई-"माया वस्य जीव अभिमानी। ईश वस्य माया गुण खानी।। परवश जीव स्ववश भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता" दी गयी है। परन्तु यह कथन इस मानस चौपाई के अर्थ और तात्पर्य का विपरीत है। चौपाई में माया वस्य केवल अभिमानी जीव को कहा गया है। सभी जीवमाया के वश में नहीं हैं- "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। गी.।। श्रीहनुमानजी प्रभृति नित्य मुक्त जीव माया के वश में नहीं हैं। अतः 'जीव माया के वश में है' का कथन अव्याप्त लक्षण है और मानस के 'माया वस्य जीव अभिमानी" चौपाई के विरुद्ध है। सभी जीव जड और माया ईश्वर के वश में ईश परतन्त्र हैं और ईश्वर स्वतन्त्र है। 'जीव असमर्थ है' का कथन भी मानस चौपाई के विपरीत एवं भ्रान्त है। जीव सर्वथा असमर्थ नहीं है, वह अल्पज्ञ और अल्प समर्थ है तथा पुण्य या पाप करने में स्वतन्त्र है। यह अल्प स्वतन्त्रता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईश्वर नियन्त्रण में ईश्वर प्रदत्त है। यदि जीव को यह अल्प स्वतन्त्रता नहीं रहती तो इसे पाप पुण्य के फल का भागी भी नहीं होना पडता परन्तु भगवानने कहा है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' अतः चन्द्रिकाकार का कथन भ्रामक और भ्रान्त है।

२१५ में जीव को कार्य एवं भगवान् को उसका कर्ता कहा गया है। यह कथन सर्वथा भ्रान्त है। कार्य प्रागभाव प्रतियोगी और अनित्य होता है। जीव की त्रयकालिक नित्य सत्ता है। श्रीशङ्कराचार्य के मायावादी विवर्तवादी अद्वैत वेदान्त में ही जीव कार्य है, जीव ही नही ईश्वर भी कार्य है और दोनों अनित्य हैं चार्वाक मत में जीव कार्य हैं और ईश्वर (राजा) कार्य है। बौद्ध मतों में भी जीव कार्य है। इस प्रकार जीव को कार्य मानना चार्वाक, बौद्ध और मायावादी मत है, जो श्रीरामानन्द वेदान्त एवं अन्य आस्तिक दर्शन किसी को भी इष्ट नहीं हो सकता। अनीश्वर वादी जैनों को भी इष्ट नहीं हो सकता। वे भी नित्य आत्मा मानने वाले हैं।

२१६ में जीवों की अनेकता' को निर्विवाद निरूपित कहा गया है, परन्तु अद्वैतवादी का एक समूह एक आत्मवादी है। किञ्च वे ब्रह्म को ही जीव मानते हैं और 'एकोऽहं बहुस्याम्' वाक्य से एकात्मवाद को ही मानते हैं। अतः आत्मा का अनेकत्व वेद और प्रमाण सिद्ध तथा हमारे सम्प्रदाय मान्य तो है, परन्तु निर्विवाद नहीं है अतः श्लोक का 'निर्विवाद'' वाक्य खण्ड भ्रान्त है।

२१७ में हनुमानजी के 'दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य' तथा वेद के 'वैष्णवमसि'' शब्द से जीव का दासत्व प्रमाणित किया है, जो भ्रान्त है। यदि श्रीहनुमानजी 'दासा वयम्' कहे रहते तो सभी जीवों का दासत्व कहा भी जाता किन्तु यह 'दासोऽहम्' एक वच-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नान्त पद तो केवल अपने लिए श्रीहनुमानजी कह रहे हैं, सभी जीवों के लिये नहीं। अभी इसके अव्यवहित पूर्व श्लोक में एकान्त बहुवचनान्त पदों के आधार पर ही एकत्व और अनेकत्व का निर्णय ग्रन्थ में किया गया है और इस श्लोक में उस सिद्धांत का व्यभिचार ग्रन्थकार और ग्रन्थ को अप्रामाणिक तथा द्विधा भाषी बनाता है। इसी प्रकार 'वैष्णवमसि' भी एक वचनान्त पद ही है। पुनः वैष्णवमसि का अर्थ तुम विष्णु का दास हो अर्थ ही नहीं है। सच तो यह है कि जीव का तात मात गुरु सखा सब विधि हितु मेरो। मेरो तेरो नाते अनेक मानिए जो भावे है। केवल दास सम्बन्ध ही नहीं।

२।८ में कहा गया है कि "सम्पूर्ण जीवात्मा परमात्मा के दास हैं, इसप्रकार प्राचीनों के वचन की सङ्गति जीव के दासत्व पक्ष के लिये सिद्ध है।" परन्तु ग्रन्थकार ने एक भी ऐसा वचन उघृत नहीं किया है। इसलिए सभी जीवात्मा परमात्मा के दास ही है का कथन सर्वथा भ्रान्त है। लक्षण प्रमाणाभ्यां पदार्थ सिद्धि न तु केवल प्रतिज्ञा मात्रेण। किञ्च यह अग्रिम २।१० का व्याघातक भी है।

२।९ में जीव की नित्यता सिद्ध की गयी है। यह सभी को मान्य है, परन्तु यह ग्रन्थकार के श्लोक २।५ में जीव को कार्य एतावता अनित्य बताने वाले वाक्य का व्याघातक है। इसप्रकार स्वयं ग्रन्थकार अपने पूर्व प्रतिपादन का खण्डन कर रहे हैं।

२।१० में जीव और परमात्मा का नित्य सखाभाव बतलाया गया है। यह भी सर्व मान्य श्रुति वाक्य है। परन्तु इससे ग्रन्थ कार के २।७ का खण्डन होता है।

२।११ में परमात्मा को जीव का सुहृत कहा है, यह भी ठीक है, परन्तु यह भी १७ का व्याघातक है। श्लोक २।१० में सखा और २।११ में सुहृद् कहा गया है, परन्तु वह मित्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और बन्धु भी है–'अत्याग सहनो बन्धुः सहैवानुगतः सुहृत। एक क्रियं भवेन्मित्रं समप्राणः सखा स्मृतः'' वह पिता एवं गुरु भी है—'पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यस्य गुरुर्गरीयान् । वह माता भी है–'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो–वेद वह सभी कुछ है। ग्रन्थकार का केवल दास भाव एवं केवल सखा और सुहृत का सम्बन्ध भ्रान्त और अव्याप्त है ।

२।१२ में कहा गया है कि भगवान् के समान ही जीव भी जन्म वर्जित है और उसके जन्म मृत्यु का विभाग शरीर की उत्पत्ति विनाश के कारण माना जाता है।

परन्तु ग्रन्थकार का यह कथन भ्रामक और भ्रान्त है। इस में 'भगवानिव' सादृश्य बिल्कुल गलत है। भगवान् का जन्म स्वेच्छा से होता है–''प्रकृतिस्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्म मायया।' परन्तु जीव का जन्म स्वेच्छा विरुद्ध कर्मफल भोगने के लिये लेना पड़ता है ''विकारञ्चरामोदयाब्धिस्तथात्रेदयाशून्यतां पक्षपातं च नैति । प्रकारे विकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणनां प्राच्यकर्म'' श्रातसिद्धान्त बिन्दु८। पुनः जीवका जन्म भौतिक शरीर में कर्मफल भोगने के लिये होता है–'आत्मनो भोगाय शरीरम्' परन्तु परमात्मा का जन्म अभौतिकदिव्य शरीर में और अपनी इच्छानुरूप होता है– ''जन्मकर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वादेहं पुनर्जन्म नैतिमामेति सोऽर्जुन ।। इच्छामय नर वेश ससारे। जीवों का धारण परवश है और परमात्मा का स्ववश। इस प्रकार जीव और परमात्मा के जन्मादि में अन्तर ही नहीं अपितु विरोध भी है–'अजायमानो बहुधा विजायते।'' अतः ग्रन्थकार का 'भगवानिव' शब्द भ्रान्त और भ्रामक है।

२।१३ में गीता द्वारा देह देही के विभाग का कथन है। यह कथन ठीक है। परन्तु वहां गीता में तात्त्विक और पारमार्थिक रूप से २।१२-२५ तक जीव को अजन्मा निरूपित किया गया है, वहीं २।२१-२८ में व्यवहारिक वा लौकिक दृष्टि से जन्म मृत्यु वाला भी प्रतिपादित किया गया है। देह का देही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के साथ साहचर्य से देह के जन्म मृत्यु को देही का जन्म मृत्यु समझा जाता है और सर्वत्र ऐसा ही व्यवहार होता है–'द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यान्यपि योधवीरान् । मया हतांस्त्वं व्यतिष्ठा०'' में मया हतान् पद शरीर के लेश से ही प्रयुक्त है । किञ्च जीव विना शरीर के जीव स्वतन्त्र रह ही नहीं सकता है । स्थल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर के आश्रय में वद्ध तथा दिव्य शरीर के आश्रय में मुक्त अवस्था में रहता है । परन्तु परमात्मा के आश्रय में ही चित् और अचित् रहता है । वस्तुतः चित् स्वयं परमात्मा का शरीर है–'यस्यात्मा शरीरम्' । यहां शरीर का अर्थ शीर्यते प्रतिक्षणमिति शरीरम्' अथवा 'आत्मनो भोगायतनं शरीरम् नहीं प्रत्युत 'चेष्टाश्रयं शरीरम है ।

२।१४ में परमात्मा का अन्तर्यामी रूप से प्रत्येक शरीर में जीवात्मा के साथ नित्य विराजने तथा उनके विना जीव को स्थिर नहीं रहने की बात कही गयी है । परमात्मा सर्वव्यापक होने से प्रत्येय शरीर के अन्तर्गत ही नहीं, प्रत्युत सर्वत्र व्यापक है । अतः इस कथन में कोई विशेषता नहीं है' विशेषता–'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च, ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देसे-अर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रा रूढानि मायया दात् तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत । तत्प्रसादपरां शान्तिं स्थानं प्राप्यसि शाश्वतम् ।। इन वाक्यों में प्रकट रूप से स्थिति तथा प्रेरकत्वादि के प्रतिपादन में है । जिसे ग्रन्थकार ने नहीं किया है ।

२।१५ में कहा गया है कि इस प्रकार ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् स्मृतियों एवं पुराणों के वचनों के प्रामाण्य से युक्ति युक्त रूप से जीव और ईश्वर के भेद का प्रतिपादन किया गया । परन्तु यह कथन भी असत्य है । यहाँ ब्रह्मसूत्र का कोई भी सूत्र नहीं दिया गया है, इसी प्रकार पुराणों का भी कोई वचन नहीं दिया गया हैं । युक्ति न तो दी गयी है और नहीं वे दे ही सकते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि युक्ति देने पर उन्हें अनुमान प्रमाण मान्य हो जायगा, जो उनको अनुमान को प्रमाण नहीं मानने का विघातक होगा।

इस श्लोक में यह भी कहा गया है कि जो लोग इसमें संशय करते हैं वे बहुत युगों तक नरक में निवास करते हैं। परन्तु ग्रन्थकार का यह कथन भी सर्वथा भ्रान्त है। अध्यात्म के विषय में संशय करने वाला नरक नहीं जाता है। यदि ऐसा होता तो सर्व प्रथम 'एतन्मे संशयं कृष्ण' कहने वाले अर्जुन को ही नरक में निवास करना पडता पुनः श्रीरामजी के विषय में शङ्का करने वाली श्रीपार्वतीजी को ही नरक वास करना पडता संशय का प्रयोजन ज्ञान की प्राप्ति है–'संशयः ज्ञानप्रयोजनः भवति' बिना संशय की जिज्ञासा नहीं होती और विना जिज्ञासा के अज्ञात ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है। संशयोऽज्ञात तत्त्वस्य वाक्ये स्यादनिश्चयः। दोलायमानाप्रतीति संशयः। भगवान् ने भी ज्ञान प्राप्ति के लिये परिप्रश्न करने का उपदेश दिया है–'तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'' नरक वास विपर्यय (मिथ्या ज्ञानं विपर्ययः) वालों एवं कुतर्क कर वेदादि शास्त्रों के खण्डन करनेवाले को एवं स्वार्थवश वेदादि के विरुद्ध मत उपदेश करने वालों को होता है पूर्वाचार्यों के विरुद्ध द्रोह करने वालों को होता है सद्ग्रन्थों को संदिग्ध बताने वालों छलियों को होता है।

२।१६ में जीवों के विषयी, साधक, सिद्ध–ये तीन प्रकार प्रतिपादित किये गये हैं। परन्तु वस्तुत 'यह प्रकार जीव के कार्य (आचरण) के दृष्टिकोण से हैं, तात्त्विक दृष्टिकोण से जीवों के तीन प्रकार बद्ध, मुक्त और नित्य मुक्त है जिनका निरूपण जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर में किया है। फिर उनके विपरीत यहां निरूपण कर इसे श्रीरामानन्द सिद्धान्त कहना पाखण्ड नहीं तो और क्या है ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२ श्लोक २३ में इच्छानुसार चारों प्रकार की मुक्तियां देने एवं मुक्ति को नहीं चाहने वाले को प्रेम लक्षणा भक्ति देने की बात कही गयी है। परन्तु यह कथन भ्रान्त है। जीवों की इच्छा के अधीन फल नहीं है। फल भगवान् की व्यवस्था के अधीन है। श्रीरामानन्द सिद्धान्त के अनुसार श्रीसाकेत लोक प्राप्ति का नामही मुक्ति है और श्रीरामानन्दीय साधना से साकेत प्राप्ति होती है। इसमें जीव की इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न नहीं है सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति की चार श्रेणियां है जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ सायुज्य (जिनमें प्रथम तीन भी गतार्थ है) मुक्ति ही श्रीरामानन्दीय साधकों को मिलती है और यह अहं ब्रह्मास्मि की एकत्व वा समानत्व प्राप्ति नहीं है प्रत्युत इसमें भक्त और भगवान् का सम्बन्ध, तारतम्य तथा सेवा और प्रेम भक्ति सतत कायम रहता है। "परं पदं सोऽयमुपेत्य नित्यमसमानवं ब्रह्म पदेन तेन। सायुज्यमेव प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य स नन्दति तेन साकम् ॥ "सीमान्त सिन्ध्वाप्लुत एव धन्यो गत्वा पर ब्रह्म सुवीक्षितोथ। प्राप्यं महानन्द महाब्धिमग्नो नावर्तते जातु ततः पुनः सः ॥ श्री.वै.म.भा.९९।१० यही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का सिद्धान्त वाक्य है, इससे भिन्न नहीं। अतः चन्द्रिका कार का श्लोक श्रीरामानन्दाचार्य अभिमत नहीं है और भ्रान्त है।

२ श्लोक २४ में लिखा है कि "परब्रह्म श्रीराम के साक्षात्कार में सहायक समस्त साधनो को अपनी श्रेष्ठता से अतिक्रान्त करके भक्ति देवी ही सर्वोच्च स्थान करती है, पुनः श्रीरामजी के चरण कमल का साक्षात्कार किये हुये महापुरुष के लिये भक्ति ही परम साध्य बन जाती है। इस प्रकार प्रमाता जीव के लिये प्रमेय ब्रह्म की प्रभा में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ सहायक है। विशेष मानस में नारदजी से भगवान् श्रीराम भी कहते हैं; अस विचारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडित मोहि भजहीं । पायेउ ज्ञान भगति नहीं तजहीं ॥" परन्तु यह कथन भी भ्रामक है । भक्ति श्रीरामके साक्षात्कार या प्राप्ति का श्रेष्ठतर साधन है, परन्तु श्रेष्ठतम साधन प्रपत्ति (शरणागति) है–"प्राप्तुं परां सिद्धिमकिञ्चनो जनो द्विजातिरिच्छन् शरणं हरिं व्रजेत् । परं दयालुं स्वगुणानपेक्षित क्रिया कलापादिकजाति बन्धनम् ॥ विहाय चान्यत्परमं दयानिधिं प्राप्यं समर्थं निरपाय-मीश्वरम ॥ उपायमेतेष्ष्वव साय सुस्थता ज्ञेयाः प्रपन्ना सततं हरि प्रिया। श्रीवै.म.भा., भगवान् इस शरणागति (प्रपत्ति) को सम्पूर्ण गीता में ज्ञान योग भक्ति योग, कर्मयोग संन्यास योग, सांख्ययोग आदि साधनों को कह कर उन्हें 'गुह्याद् गुह्यतर' ही कहा (गी. १८।६३), किन्तु शरणागति (प्रपत्ति) को 'सर्वगुह्यतमम्' कहा है (गी. १८।६४) सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८।६६" श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के रहस्य त्रय के तीनों मन्त्र– १. तारक मन्त्र–रां रामाय नमः, २. द्वयमन्त्र–श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरण पपद्ये । श्रीमते रामचन्द्राय नमः और चरम मन्त्र 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम । शरणागति मन्त्र ही हैं और यह सम्प्रदाय प्रपत्तिमार्ग ही है । अतः सर्वश्रेष्ठ साधन प्रपत्ति है, भक्ति नहीं। भक्ति साधन (हेतु) और साध्य (जिसको सिद्ध करना विवक्षित हो) ही नहीं, अपितु यह स्वयं फलरूपा होने से प्राप्य भी है । अतः प्रपत्ति को सर्व श्रेष्ठ साधन और भक्ति को फल कहना ही उत्तम है । श्रीराम के प्राप्ति के पूर्व भक्ति कार्य रूपा रहती है और प्राप्ति के पश्चात् फल रूपा हो जाती है । मानस के 'पायउ ज्ञान भगति नहीं तजहिं' में भक्ति का असल महत्त्व नहीं प्रकट किये हैं, उसे गुप्त ही रक्खे हैं । असल महत्त्व तो 'पायेउ मोहि भगति नहीं तजहिं' में छुपा है । भक्त भगवान् विना रह सकता है परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्ति विना कभी नहीं। भक्ति प्रेम रूपा है जो जीव का जन्म जात नैसर्गिक अविच्छेद्य गुण या स्वभाव है। वह प्रेम के विना रह नहीं सकता, भगवान् के विना भले ही रहे। जैसे प्रभु से बडा प्रभु का नाम है, वैसे ही भगवान् से बडी भगवद्भक्ति है। भक्ति को भगवान् ही माना जाता है–'चतुर नाम वपु एक" और प्रेम प्रेम के लिये सिद्धान्तानुसार भक्ति के लिये ही की जाती, वही वास्तविक भक्ति है जो इससे भिन्न के लिये की जाती है वह भक्ति नहीं व्यापार है।

रश्मि ३/२ की श्रीव्याख्या में कही गयी है कि "इन्हीं (प्रत्यक्ष और वेदानुवचन) दोनों प्रमाण रूप महासागर में अन्य दार्शनिकों के सम्मत अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति अनुपलब्धि चैष्टिक, ऐतिहियक, आदि सभी प्रमाण अन्तर्भुत हो जाते हैं।" और श्लोक ३–१० में अनुमान, श्लोक ११ में उपमान, श्लोक १२ में अर्थापत्ति, श्लोक १३ में अनुपलब्धि की समाक्षा की गयी है। परन्तु चैष्टिकं और ऐतिह्य की कोई समीक्षा नहीं की गयी है। जो ग्रन्थ निरूपण में त्रुटि है एवं 'परमतमप्रतिषिद्ध-मनुमतं भवति' सिद्धान्तानुसार स्वीकृत समझा जायगा।

ऐतिह्य='अनिर्दिष्ट प्रवक्तृकं प्रवाद पारंपर्यमैतिह्यम', 'अदृष्ट वक्तृकः प्रवाद एवैतिह्यकम।' प्रवाद का अर्थ प्रसार, चर्चा, किंवदन्ति, उडती खवर है। भासर्वज्ञ ने न्यायसार एवं उसकी वासुदेव कृत पद पंथिका में लिखा है–"अनिर्दिष्ट प्रवक्तृकं प्रवाद पारंपर्यमैतिह्यमागमेऽन्तर्भूतम ॥न्या.सा.॥ अनिर्दिष्ट अनिश्चितः प्रवक्ता द्रष्ट्रीत्वेन मूलभूतो यत्र तदनिष्ट प्रवक्तृकं प्रवाद पारंपर्यम। सत्यचेदिति शेषः असत्यंचेद प्रमाणम्। एतदुदाहरति। प.प.।–यथेह वटे यक्षः प्रतिवसहि इति।' परन्तु आगमः (शब्द) प्रमाण के लिए 'आप्तोपदेशः शब्दः' कहा गया है एवं वेद को 'ईश्वरोक्तत्वात् सर्वं प्रमाणम"–कहा गया है। परन्तु ऐतिह्य के वक्ता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ही अनिश्चय है, उसकी आप्तता की बात तो पीछे रहे। फिर यह आगम के अन्तर्भुत कैसे होगा एवं 'इह वटे यक्षः प्रति वसति' का प्रमाण आगम कैसे माना जायगा? आप्तोपदेशत्व के प्रभाव में इसकी अप्रामाणिकता ही होगी। फिर यह प्रमाण ही कैसे? इसे प्रमाण मान लेने से चन्द्रिकाकार का प्रमाण निरूपण भ्रान्त वा संशयग्रस्त सिद्ध है। न्यायमञ्जरीकार जयन्त ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है—'ऐतिह्यं तु न सत्यमत्र हि वटे यक्षोऽस्ति वा नेति वा। को जानाति कदा च केन कलितं यक्षस्य कीदृग्वपुः ॥ श्लो० २३९॥" यद्यपि न्याय सूत्रकार गौतम ने–शब्द ऐतिह्यमर्थान्तरभावात्–२।२।२।' में ऐतिह्य को शब्द प्रमाण के अन्तर्गत ही कहा था। परन्तु विप्रतिषेधे परं कार्यम् के अनुसार जयन्त का मत आदरणीय है–न चायमागमः, आप्तस्योपदेष्टुरनिश्चयादिति तदनुपपन्नम्। न्याय म.। वै.सू. के भाष्यकार प्रशस्तपादने ऐतिह्य को अनुमान के अन्तर्गत माना है परन्तु उनका ऐतिह्य का लक्षण दूसरा है–'तथैवेति ह्यमप्यवितथमाप्तोपदेश एवेति ॥' प्र.भा. ॥"

चेष्टा—भासर्वज्ञ ने लिखा है–'प्रयत्न जनिता शरीरतदवयव क्रिया चेष्टा। साच नाट्यशास्त्रादि समय बलेन पुरुषाभिप्राय विशेषमर्थं विशेषं च गमयतीति नागमाद्भिद्यते, लिप्यक्षरादर्थप्रतिपत्तिवदिति ॥" इसकी पदपञ्चिका में लिखा है–"प्रयत्न जनितेत्यनेन वाय्वादिविकारजनितहस्तादिकम्पव्यवच्छेदः। नाट्यशास्त्रादीप्यादेशब्दाल्लोकव्यवहारपरिग्रहः। क्रियेत्युपलक्षणम्। संयोगेनाप्यर्थप्रतीतिदर्शनात्। हस्तमुखसंयोगविशेषाभ्यां पिपासाबुभुक्षा प्रतिपत्तिः लिपिरेवाक्षरं तस्मादिति चेष्टयाः प्रमाणान्तराभ्युपगमे लिप्यक्षराणामपि प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्ग इति सूचितम्। न च वक्तव्यम् लिप्यक्षरानुमिताक्षरेष्वर्थप्रतिपत्तिरिति क्रमेण, प्रमाणाभावात्, चेष्टातो वा तथा प्रसङ्गात् ॥' वैशेषिक भाष्यकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शस्तपाद ने लिखा है 'प्रसिद्धाभिनयस्य चेष्टाया, प्रतिपत्ति दर्शनात् तदप्यनुमानेवा ॥'

इस प्रकार ऐतिह्य और चेष्टा का विवेचन शून्य होने से चन्द्रिकाकार का प्रमाण निरूपण अपूर्ण एवं भ्रान्त है।

पञ्च तन्त्र में कहा गया है–'उदीरितोर्थं पशुनापि गृह्यते हयाश्चनागाश्च वहन्ति चोदिताः । अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः। परेङ्गिता ज्ञानफला हि बुद्धयः ॥ मित्र भेद श्लोक ।४४।' मनुजी ने कहा है–'आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्ठया भाषणेन च । नेत्र वक्त्र विकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥' इस प्रकार चेष्टा अन्तर्गतमन के भावों का ज्ञापक होने से ज्ञान विशेष का प्रमाण है।' चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्– न्या. १।१।११" के अनुसार शरीर चेष्टा । इन्द्रिय ज्ञान्द्रियों के विषयों का आश्रय होने से जैसे शरीर के वागेन्द्रिय की चेष्टा 'शब्द' प्रमाण है, उसी प्रकार शरीर के नेत्र हस्तादि अन्य इन्द्रियों की चेष्टा संकेत भी प्रमाण है। परन्तु जैसे शब्द की प्रामाणिकता आप्त पुरुषनिष्ठ है, उसी प्रकार नेत्रादि जन्य संकेतों चेष्टा की प्रामाणिकता भी आप्त पुरुष निष्ठ ही है। अन्यथा मक्कार लोग भी घडियाली आंसू चुआ कर मिथ्या वेदना प्रकट करते हैं।

३ श्लोक ४ में कहा गया है कि परमात्मा के विषय में अनुमान प्रमाण हो ही नहीं सकता है परन्तु यह कथन भ्रान्त है। न्याय सूत्र भाष्यकार ने लिखा है–'अस्त्यात्मेत्याप्तो पदेशात प्रतीपते तत्रानुमानम् इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति । प्रत्यक्षंयुञ्जानस्य योग समाधिजमात्ममनसोः संयोग विशेषादात्मा प्रत्यक्ष इति' अर्थात् आत्मा है यह ज्ञान आप्तोपदेश (आगम) प्रमाण से प्राप्त है। पुनः यह ज्ञान (२) लिङ्ग (अनुमान–इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानात्मनो लिङ्गम्–न्या.सू. १।१।१०). से भी प्राप्त होता है। पुनः यह ज्ञान (३) योग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाधि में भी आत्मा और मन के विशेष संयोग से प्राप्त होता है। समान नियमतः जैसे आत्मा (जीवात्मा) का ज्ञान १. आगम २. अनुमान और ३. प्रत्यक्ष के द्वारा होता है उसी प्रकार आत्मा (परमात्मा) का ज्ञान भी १. आगम २. अनुमान और प्रत्यक्ष द्वारा होता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व संयोग और विभाग-ये पांच सामान्य गुण जीवात्मा और परमात्मा, इन दोनों के ही हैं। केवल भावना (संस्कार), सुख दुःख, धर्म, अधर्म, ये विशेष गुण ही वैशेषिक मत में परमात्मा के नहीं है। न्याय वैशेषिक मतमें आत्मा और परमात्मा एक ही द्रव्य है, एवं एक ही आत्म द्रव्य के जीवात्मा और परमात्मा, ये दो प्रकार हैं। वेदान्त मत में तो 'सर्वगुणम्' उपनिषद् वाक्य से परमात्मा भी गुणवान् वा सभी गुण रूप है। अत; गुण से गुणी का अनुमान स्वभाव सिद्ध है क्योंकि गुण द्रव्याश्रयी होता है। ज्ञान किसी द्रव्य का आश्रयी है, गुण होने के कारण. इस अनुमान से आत्मा की सिद्धि होती है और 'ज्ञानाधिकरणमात्मा, स द्विविधः जीवात्मा परमात्मा च' यह आत्मा का लक्षण कहा गया है। इसी प्रकार इच्छा और प्रयत्न से भी जीवात्मा एवं परमात्मा का अनुमान होता है। यह तो केवल न्याय वैशेषिक मतानुसार हुआ। हमारे मत में सुख दुख क्षुधा पिपासा आदि आत्मा का गुण धर्म नहीं होते हुये भी शरीर (चेतनाश्रित शरीर) के गुण धर्म हैं। पेट में क्षुधा लगती है, जीभ में पिपासा होती है, शिर पाद आदि में वेदना होती है, आदि। इसी प्रकार परमात्मा का यह क्षुधा पिपासा, सुख दुःख आदि गुण धर्म नहीं होते हुये भी चिदचिद्विशिष्ट शरीरी होने से इस शरीर के लेश से उसे भी यह क्षुधा पिपासा सुख दुखादि होता है। हम भगवद्विग्रह को पंखा झलते हैं, पत्रं पुष्पं फलं तोयं आदि अर्पित करते हैं। एकबार श्रीरामानन्द आश्रम के महात्मा श्रीजनकदुलारीशरणजी भगवान् के पास झारी में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जल रखना भूल गये और मन्दिर का कपाट बन्द कर दिये । जब शयन करने चले तो उन्हें तीव्र पिपासा लगी वे जल पिये। फिर थोडी देर में इसी प्रकार प्यास लगी और वे जल पिये, जल से पेट भर गया परन्तु प्यास मिटती ही नहीं थी । किसी प्रकार रात्री व्यतित हुई । प्रातः काल जब मन्दिर का द्वार खोलते हैं, तो देखते हैं कि झारी में जल ही नहीं रक्खा था । यह घटना भगवान् को भी क्षुधा पिपासा को प्रत्यक्ष सिद्ध करती है । द्रौपदी के पात्र से शाक का टुकडा भगवान् कृष्ण ने खा लिया तो जगत् का पेट भर गया । यह पौराणि वार्ता है । अतः न केवल इच्छा. ज्ञान, प्रयत्न के हेतु से परमात्मा का अनुमान होता है, अपितु सुख दुख धर्म अधर्म आदि सभी गुणों के हेतुओं से भी । लोग मन्दिरों में मनौती मानते हैं और फल मिलता है तथा मिष्टान्न आदि मनौती चढाते हैं । अतः मनौती हेतु से भी परमात्मा का अनुमान होता है । सत्त्व गुणी रजोगुणी तमोगुणी और गुणातीत व्यक्तियों का ज्ञान न तो आगम से होता है और न प्रत्यक्ष से प्रत्युत आगमाश्रित अनुमान से ही अर्जुन के प्रश्न कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ?" से भी लिङ्ग (लक्षण) के द्वारा ही लिङ्गी गुणातीत का ज्ञान होता है । आगम से केवल गुणातीत का लक्षण (लिङ्ग) का ज्ञान होता है लिङ्गी गुणातीत व्यक्ति का नहीं । लिङ्गी गुणातीत व्यक्ति का ज्ञान तो प्रत्यक्षागमाश्रितमेवानुमानम के अनुसार उस आगमोक्त लिंग (लक्षण) के आधार पर अनुमान द्वारा ही होता है । जे जे वरके दोष बखाने । ते सब शिव पहि मैं अनुमाने ।।" नारद बाबा ने इसी प्रकार का लिङ्ग के द्वारा लिङ्गी का ज्ञान अनुमान द्वारा ही प्राप्त किया था । अतः अनुमान प्रमाण ईश्वर का साधक है और सिद्धान्त चन्द्रिका कार का यह सिद्धान्त भ्रान्त है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ-शिविर में आनन्दभाष्य सिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामेश्वरानन्दाचार्यजी के दैनिक स्वाध्याय-प्रवचन का कुछ संक्षिप्त भाग जो जीवात्मा एवं परमात्मा के विवेचन विषयक है--

मोक्ष के प्रतिपादक इस गीताशास्त्र में परमपुरुषार्थपना से उपेयस्वरूप उसकी उपायभूत उपासना अविकारी एवं आत्मा के स्वरूप का आदि में उपदेश करते हैं

न त्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

मैं सर्वनियन्ता "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' क्षरं प्रधानममृताक्षरं हर क्षरात्मनामीशते' 'भीतर प्रवेश कर जीवों का शासन करनेवाला सर्वात्मा' क्षर प्रधान अमृत अक्षर जीव इन दोनों क्षरात्मा का परमेश्वर ईशन करता यानी नियमन करता है इत्यादि श्रुतियों के प्रामाण्य से सर्वेश्वर परमात्मा श्री रामजी साधुओं के परित्राण रक्षण के लिये अभी इस दिव्य रूप से अवतीर्ण होकर सबजनों का नेत्र विषय भूत मैं 'जातु' इस काल से पहले यानी सृष्टि से पूर्व काल में भी नहीं था यह नहीं किन्तु था ही। जगत् के अभिन्न निमित्तोपादन-कारणत्व रूप से मैं था नहीं था ऐसा नहीं क्योंकि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म' जिससे निश्चयरूप से परिदृश्यमान ये भूत वर्ग उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए जिसके द्वारा जीते हैं जिसे प्राप्त करते हैं और अन्त में जिस में सम्यक् रूप से प्रवेश करते हैं उसकी जिज्ञास करो वह ब्रह्म है'' इस श्रुति से यही निश्चित होता है। तू अर्जुन सृष्टि से पहले नहीं था यह भी नहीं किन्तु था ही। ये सामने में वर्तमान जनाधिप यानी राजाओं भी सृष्टि से पहले नहीं थे, यह नहीं, किन्तु थे ही, 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' 'हे सौम्य इदमग्र सृष्टि से पहले यह सत् ही था जो एक अद्वितीय यानी सजातीय द्वितीय रहित है, इस श्रुति में सत्-पद वाच्य ब्रह्म के एकत्व के निश्चय से शरीरत्व से सभी ब्रह्म विशेषता प्राप्त चिदचित्पदार्थों का नाम रूप विभागानर्हतापन्नत्व ही कहा है इस कारण से उस श्रुति से विरोध नहीं होता है। सर्वे वयम्' मैं तू ये राजाओं भी, मैं ईश्वरत्व त्वप्रभृतिक यानी तुझ से लेकर सब ईशितव्य जीवगण भी। अतः परं यानी वर्तमानकाल से पर काल में कभी नहीं होंगे यह भी नहीं, किन्तु होंगे ही क्योंकि प्रलय करने वाले मुझ ईश्वर को ही जगत् के अभिन्न निमित्तोपादानत्व से मुक्तोपसृप्यत्व के व्यपदेश से यानी व्यवहार से। इस प्रकार से श्रुति कहती है जैसे 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' परं ज्योतिरूप संपद्यस्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते' इत्यादि। सृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से पहले एकमात्र अद्वितीय सत् ही था' पर ज्योति को उपसंपन्न प्राप्त होकर अपने रूप से अभिनिष्पन्न होता है' अतः शरीर क्षीण होने के वाद प्रलयकाल में लोकान्तर गमन होने पर भी इन जीवों की असद्‌भाव सम्भावना न नहीं है, संसारिता प्रयोजक कर्मों के नाश होने से कृत विनाश अकृताभ्यागमप्रसङ्ग दोष भी नहीं। मुक्ति में भी 'परं ज्योतिरूपसंपद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते' 'पर ज्योति प्राप्त कर अपने रूपसे अभिनिष्पन्न होता है' 'स एकधा भवति त्रिधा भवति' 'वह एक प्रकार से होती है और तीन प्रकारों से होता है, इत्यादि श्रुति से एवं 'इदं ज्ञानमुपाश्रित्य' इस ज्ञान को प्राप्त कर मेरे धर्मको प्राप्त हुए सृष्टि में भी उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलय में भी पीडित नहीं होते हैं, इस स्मृति के प्रामाण्य से भी जीव विनाशता को प्राप्त नहीं करते हैं किन्तु 'तद्विष्णोः परमं पदम्' देवानां पूरयोध्या' विष्णु का उस परम पद को प्राप्त करते हैं, देवों की पुरी अयोध्या है' इत्यादि श्रुतियों से प्रमाणित नित्यधाम में भगवान् श्रीरामजी के निरतिशयानन्दरूप किङ्करता प्राप्त करते हुए 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते' अविद्या से यानी विद्या के अंशभूत कर्म से मृत्यु अर्थात् विद्याविरोधि पुण्यपापरूप प्राचीन कर्म को पार करके विद्या से यानी सर्वेश्वर श्रीरामोपासना रूप कर्म से अमृतत्व सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है, इस श्रौत वचन को चरितार्थ करते हुए रहते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार से अज्ञान से मोहित का अज्ञान हटाने के लिये तात्त्विक आत्मा के नित्यत्व के उपदेश के अवसर में अपने को 'अहम्' इस शब्द से प्रत्यक्त्व से अर्जुनादियों को 'त्वम्' इस शब्द से स्वाभिमुखचेतनान्तरत्व से 'इमे' इस शब्द से स्वपराङ्मुखानेकचेतनत्व से 'सर्वे' इस उपाधि से संगृहीतानेक व्यक्तित्व से 'वयम्' इस शब्द से अपने साथ आत्मरूप से एक-वर्गीकृतान्त व्यक्तित्व के कथन से जीवों का अपने से परस्पर 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको वहूनां यो विदधाति कामान्' 'नित्यों के बीच में नित्य चेतनों के विचमें चेतन वहूतों के विचमें एकपने से जो कामों को करता है। इत्यादि श्रुतियों से सम्मत स्वाभाविक ही भेद और अनन्तत्व परमकारुणिक भगवान् श्रीवासु-देवजी ने कहा है।

यहां जिज्ञासा होती है कि ब्रह्मस्वरूप को ढकनेवाली ज्ञान से निवर्तनीय और अनिर्वचनीय अविद्या से कल्पित भेद दृष्टि लेकर ही 'यह है, मैं हूं तू है' इत्यादि व्यवहार होता है, ऐसा यदि कहेंगे, यह ठीक नहीं, 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' 'पराऽस्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान वल क्रिया च' जो सर्वज्ञ है वह सर्वविषयक यथार्थवित् है, इसकी परा शक्ति अनेक प्रकार की श्रुत होती है यानी सुनी जाती है एवं ज्ञानवल और क्रिया प्रभृति भी स्वाभाविकी अर्थात् सहजा हैं। इन श्रुतियों में सुनी हुई सर्वज्ञता गुणसंपन्न भगवान् की अविद्याप्रयुक्तभेद दृष्टि की असम्भव होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से उक्त दोषापत्ति युक्त नहीं । और भी देखिये सात प्रकार के दुरुद्धर आश्रयानुपपत्ति तिरोधानानुपपत्ति, स्वरूपानुपपत्ति, अनिर्वचनीयानुपपत्ति, प्रमाणानुपत्ति, निवर्तकानुपपत्ति, एवं निवृत्यनुपपत्ति, रूप दोषों के सम्भव होने से अद्वैतवादियों से स्वीकृत अविद्या उपपादन के लिये शक्य नहीं है, जैसे देखिये कि भ्रमकी उत्पादयित्री अविद्याका आश्रय कौन है ? जीव इस अविद्या का आश्रय नहीं हो सकता है, अन्योन्याश्रय दोष लगजाने से, ब्रह्मके तो ज्ञान से बाध्य अविद्या का विरोधि का विरोधि स्वयं प्रकाश ज्ञान रूपत्व है अत: अविद्या का आश्रय नहीं हो सकता है, ज्ञानस्वरूप ब्रह्मको यदि अविद्या का आश्रय कहियेगा सो नहीं हो सकता है क्योंकि—वह अविद्या ज्ञानसे बाध्य है, स्वरूप से भिन्न स्वरूप विषक ज्ञान ही अविद्या का विरोधि माने न कि स्वरूपभूत ज्ञान ऐसा कहना भी शक्य नहीं है क्योंकि जडत्व प्रसङ्ग होगा । अनुभव स्वरूप ब्रह्म को अद्वैतियों के मत में अनुभवान्तर विषयत्व के स्वीकार के अभाव होने से, प्रपञ्च मिथ्यात्व ज्ञान तो अतद्विषयकत्वेन ब्रह्मयाथात्म्यज्ञान का भी विरोधि नहीं है किन्तु प्रपञ्च सत्यत्व ज्ञान का ही विरोधि है, ज्ञान और ज्ञानाभावों के एक विषयत्व होने पर ही परस्पर विरोध सर्वसंमत है ।

किञ्च ब्रह्मस्वरूप को ढाकनेवाली अद्वैतियों से मानी हुई अविद्या क्या प्रकाश की विरोधिनी है । अथवा नहीं है ?, प्रकाश की विरोधनी है यह प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है यदि हो सकता तो उस अविद्या से अधिष्ठान के प्रकाश के अभाव होने पर अध्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की अनुपपत्ति होगी और स्वरूपनाश के प्रसङ्ग भी होगा। यदि प्रकाश की विरोधिनी नहीं है यह दूसरा पक्ष रखें तो सो भी नहीं हो सकता है क्योंकि प्रकाश के विरोधाभाव में उस अविद्या के तिरोधायकत्व के अभाव हो ने से उस अविद्या की कल्पना के वैयर्थ्य हो जाने से। और भी देखें वह अविद्या परमार्थ भूत है ? अथवा परमार्थभूत नही है। यदि पहला पक्ष रखे तो वह नहीं हो सकता है, अद्वैत की हानि होने से। दुसरा पक्ष भी नहीं हो सकता है क्योंकि वह विकल्प को सहन नहीं कर सकता है कैसे ? सुनिये परमार्थ रूप वह अविद्या दृशिरूपा द्रष्टी अथवा दृश्यरूपा है ये तीन विकल्प हैं उन में प्रथम पक्ष यदि माने तो वह नहीं हो सकता है वह दृशिरूपा अविद्या अनवच्छिन्ना है अथवा सावच्छिन्ना है ये दो विकल्प है इन दोनों मे प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है दो दृशि हो जाने से दूसरा पक्ष भी नहीं रह सकता, आश्रय दृशि के परमार्थत्व होने से तदभिन्न इस दृशि के अपरमार्थत्व की अनापत्ति होने से। आश्रय दृशि को अपरमार्थत्व मानने पर तो शून्यवाद का प्रसङ्ग हो जायेगा। दूसरा पक्ष भी नहीं हो सकता है, इस की सावच्छिन्न दृशि में कल्पित होने से मूल दोषकी अपेक्षा से अनवस्था की यानी अप्रमाणिकानन्त पदार्थ कल्पना विश्रान्ति विरह की आपत्ति हो जाती है। दूसरे तीसदे पक्ष में तो इसके कल्पित तत्त्व होने से अनवस्था दोष का प्रसङ्ग अनिवार्य है ही। और भी इस अविद्या का पद सद्विलक्षण रूप अनिर्वचनीयत्व अद्वैतियों से स्वीकृत युक्त नहीं है, क्यों कि किसी भी पदार्थ की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदसद्भिन्नत्व रूप से प्रतीति के अभाव होने से अर्थात् सत्त्वा सत्त्वान्यतर रूप से ही सब पदार्थों के प्रतीयमान होने से, सब वस्तु में यानी पदार्थ में काल भेद से देश भेद से और प्रकार भेद से अस्ति-है नास्ति नहीं हैं इन प्रतीतियों में परस्पर विरोध में प्रमाण का अभाव भी है। सद्विलक्षण है किन्तु असत् नहीं है, एवं असद्विलक्षण है किन्तु सत् नहीं है यह कहने में तो व्याघात ही है इस कारण से अविद्या का अनिर्वचनीयत्व असिद्ध ही है।

अविद्या में प्रमाणों की अनुपपत्ति तो जिस किसी का भी इस अज्ञान को अनादिभावरूप पदार्थान्तर रूप से आगम प्रत्यक्ष और अनुमानों के वल से सिद्धकर उस अज्ञान से युक्त ब्रह्म का जगदु पादानत्व है, यह कहना है वह भी समुद्र में डुवते हुए का कुश और काशों के तीनकों के अवलम्वन अनुकरण करता है" इत्यादि से 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (ब्रह्मसूत्र १।१।१) इस सूत्र के आनन्द-भाष्य में हमने—जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दचार्यजी ने विस्तार पूर्वक वर्णन कर निरस्त किया है उसे वहीं देखनी चाहिये। और भी देखिये इस अविद्या का निवर्तक क्या है। यदि ज्ञान है तो वह स्वरूपभूत ब्रह्म ही है अथवा दूसरा है। प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है उसके सार्वदिकत्व यानी सर्व कालिकत्व होने से उस अविद्या के ही असम्भव होने एवं श्रवणादिसाधनों का वैयर्थ प्रसङ्ग उपस्थित है। द्वितीय पक्ष में ब्रह्मात्मैक्य विषयक ही है वह अज्ञान अथवा अन्य विषयक है। अन्त्य पक्ष में ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहितों घटादि मात्र ज्ञानवालों की मुक्ति का प्रसङ्ग हो जायगा। आद्य पक्ष में वह ज्ञान सत्य है। अथवा मिथ्या है। यदि सत्य है तो अद्वैत की हानि होगी, मिथ्यात्व पक्ष में निवर्तकान्तर की अपेक्षा से अनवस्था हो जाने लगेगी। यदि वह ज्ञान अविद्या को नष्ट करता हुआ वह खुद ही नष्ट होता है जल का मल नाशक कतकचूर्ण के समान ऐसा कहें तो सो भी नहीं हो सकता है क्योंकि कतकचूर्णों के जल के नीचे रहने से दृष्टान्त की असङ्गति हो जाती है। और भी देखें यह अविद्या निवर्तक ज्ञान विनाश सत्य है अथवा असत्य यानी मिथ्या है।, यदि सत्य है तो अद्वैत की हानि हो जायगी, यदि मिथ्या है तो उसकी उपादानभूत अविद्या का अनवस्था दोष प्रसङ्ग हो जायगा।

इसी प्रकार से अविद्या की निवृत्ति भी उपपादन के अशक्य ही है क्योकि वह विकल्प सहन नहीं कर सकता है वह इस प्रकार से सुनिये—अविद्या निवृत्ति सत्य है अथवा मिथ्या है। आद्यपक्ष में ब्रह्मरूप है अथवा उस से भिन्न है। प्रथम पक्ष नहीं हो सकता है क्योंकि अनादि ब्रह्म स्वरूप को साध्यत्व ही असम्भव है। अन्तिम पक्ष भी नहीं हो सकता है भिन्न सत्ताकत्व होने से विरोधाभाव है तथा अनिर्मोक्ष प्रसङ्गहोगा और अद्वैत की हानि भी। अविद्या निवृत्ति के मिथ्यात्व पक्ष में निवृत्त्युपादानभूत अविद्या की निवृत्ति होनेसे सहावस्थिति की आवश्यकता है अतः अनिर्मोक्ष प्रसङ्ग होगा। इस कारण से जीव और ईश्वर में अभेद नहीं है। इस प्रसंग में यह भी जिज्ञासा होती है कि—जीव का ईश्वरत्व क्यों नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माना जाता है। यदि ऐसा कहते हैं तो सुनिये प्रमेय की सिद्धि प्रमाण से होती है अतः प्रमाण के अभाव होने से जीव को ईश्वर नहीं माना जाता है। प्रमाण तीन हैं प्रत्पक्ष अनुमान एवं शास्त्र इनमें से कोई भी जीव एवं ईश्वर की एकता सिद्र करने में क्षम नहीं है जैसे प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण जीव ईश्वर में एकता साधने में असमर्थ हैं क्योंकि उसमें स्वेच्छा विघात एवं दुःख आदि देखने में आता है एवं मैं ईश्वर नहीं हूं इस प्रकार से अनीश्वर रूप से देखा जाता है। श्रुतिस्मृति प्रभृति से ईश्वर में ईश्वर प्रतियोगिक भेद की उपलब्धि अनुपपन्न नहीं है यह सर्वजन विदित है। यदि ईश्वर ही जीवात्मा होती तो प्रत्यक्षत उसकी उपलब्धि होती नहीं है एवं जीवों की इच्छा आदि का अपूर्णपना तथा दुःखादि का प्राप्त होना आदि कारणों से निश्चित होता हैं कि प्रत्यक्षत परिदृश्यमान जीव ईश्वर नहीं है।

दोष रहित हेतु के न हो से अनुमान भी जीव एवं ईश्वर में एकत्व साधने में असमर्थ है। परन्तु अनुमान तो दोनों में भेद ही सिद्ध करता है। जैसे–सत्य स्वरूप ब्रह्म सतरूप जीवात्मा से भिन्न है पदार्थ होने से घट के समान, जीव ईश्वर प्रतियोगिक अनौपाधिक भेदवाला है। सर्वज्ञाता से रहित होने से घट के समान ईश्वर का अहंभाव अविच्छिन्न अनादि अहंभावन्तर से भिन्न है अहंभाव होने से सम्प्रतिप्रन्नजीव के अहंभाव के समान इत्यादि।

शास्त्र भी जीव तथा ईश्वर में अभेद प्रतिपादन में सक्षम नहीं है प्रत्युत शास्त्र तो अनेक रूप से जीव ईश्वर का भेद ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपादित करता है। जैसे कि ईश्वरोपासक 'जब अपने से सेवित अन्य ईशको देखता है' अपने से पृथक् एवं प्रेरक आत्मा को मान कर' 'दो सुपर्ण यानी सुन्दर पक्ष वाले सयुक्त मित्र समान वृक्ष का परिष्वक्त यानी आश्रित करते हैं, इन दोनों में अन्य एक स्वादु पिप्पल कर्मफल को खाता है, 'दुसरा विना नहीं खाता हुआ विराजमान है,' इस हेतु से निश्चय इस विज्ञानमय से अन्य अन्तर भिन्न आत्मा आनन्दमय है' 'उत्तम पुरुष तो अन्य है जो परमात्मा कहा गया है' इत्यादि से।

यदि ईश्वर ही जीव है तो क्यों स्वाभिन्न जीव के भोग के लिये दुःखरूप जगत् की सृष्टि रचना करता है ? और क्यों सुखरूप जगत् की रचना नहीं करता है, जीवेश्वर भेदवादी हमारे मत में तो सर्वज्ञ परमकारुणिक सर्वशक्तिमान् भी परमेश्वर जीवों के पूर्वजन्म में किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार से देव मनुष्यादि विषम सृष्टि उसका संहार भी करता है, इस कारण से उक्त दोष का अवसर नहीं होता है। श्रुति भी प्राक्तन शुभाशुभ कर्मानुसारिणी ही शुभाशुभ सृष्टि दिखलाती है, 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' 'पुण्यकर्म से पुण्य होता है और पाप कर्म से पाप होता है, (बृ. ४।४।५) यही कहा है। वैसाही वेदान्तदर्शन में भी 'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति' ब्रह्मसूत्र २।१।३४) वैषम्य और नैर्घृण्य निर्दयत्व नहीं होता है क्योंकि सृष्टि में सापेक्षत्व है वैसा ही आचार्यसार्वभौम श्रीश्रुतानन्दाचार्यजीने श्रौतसिद्धान्तबिन्दुनामक प्रबन्ध में कहा है—

"त्रिधापि श्रुतौ सर्ववित् सर्व शक्ति
जंगत्कारणं जानकीनाथ एव।
ततः कापिलं गौतमीयञ्च शैवं
च शाक्तं तथान्यन्मतं नानवद्यम् ॥७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकारं च रामो दयाब्धिस्तथात्वे
दयाशून्यतां पक्षपातं च नैति ।
प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ
च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म ॥८॥

यानी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् श्रीजानकीनाथजी ही जगत् के अभिन्न निमित्तोपादन कारण के रूप में श्रुति में वर्णित हैं इस लिये कपिलमत गौतममत शैवमत तथा शक्ति आदि अन्य सभी मत युक्तियुक्त नहीं हैं ।

दया के सागर सर्वेश्वर श्रीरामजी के प्रकार विशेषणीभूत प्रकृति एवं जीव में ही विचित्र सृष्टि रूप विकार होता है अतः श्रीराम जी अविकृत रहते हैं एवं अनेक विध सृष्टि में जीवों का पूर्वकर्म ही कारण होता है इसलिये दया शून्य एवं पक्षपास रूप दोष भी श्रीरामजी में नहीं लगता है ।

अब यह जिज्ञासा होती है कि–जब कर्मों का ही विषम सृष्टि में हेतुत्व है तो ईश्वर क्यों स्वीकृत होता है ? तो सुनिये–जैसे वीज के रहने पर भी अङ्कुरों के उत्पादन के लिये मेघ की आवश्यकता रहती है । वैसे ही सृष्टि के हेतु कर्मों के रहने पर भी विषम सृष्टि–व्यवस्थित सृष्टि के लिये ईश्वर की आवश्यकता है अतः ईश्वर को मानना परमावश्यक है । उसके विना नहीं चलता । पुनः यहां जिज्ञासा होती है कि मुक्तजीव स्वरूप ब्रह्म से अभिन्न है । चेतनत्व हेतु से वैसे ब्रह्म यह अनुमान मुक्तजीव का ब्रह्म से अभेद साधक है । ऐसा यदि कहियेगा तो यह नहीं हो सकता है क्योंकि विकल्प के सहनके अभाव होने से जैसेकि यहां पक्ष और दृष्टान्तों में भेद है ? अथवा अभेद है ? इन विकल्पों में आदिम विकल्प नहीं हो सकता है । वाध दोष से ग्रस्त हेतु का दुष्टत्व हो जाने से साध्य साधन में अक्षम हो जाता है, यदि अभेद पक्ष रखते हों तो दृष्टान्तासिद्धि हो जाती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निगृहीतानुहीत जन का निग्राह्यत्व निवृत्त होने पर भी जैसे निग्रहानुग्रहकारी राजा से ऐक्य नहीं होता है वैसे कर्मबन्धन से विनिर्मुक्त मुक्तात्माओं का भी परमात्मा से ऐक्य नहीं होता है।

इसी लिये वेदान्त दर्शन में हमारे सम्प्रदाय के ७ वें आचार्य भगवान् वादरायण व्यासजी ने सूचित किया है कि जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च' (४।४।१७) इस सूत्र का व्याख्यान व्यासजी के प्रशिष्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी भगवान् बोधायन महर्षि ने किया है कि–'जगद्व्यापारवर्जं समानो ज्योतिषा' (बोधायनवृत्तिः ४।४।१७) जगत के व्यापारो को छोडकर ज्योति यानी अन्य ऐश्वर्यादि में मुक्तजीव भगवान् के समान ही होता है यानी सायुज्य मुक्ति होने पर भी आत्मा का सर्वेश्वरत्व नहीं होता है। यहां आत्मा शब्द से जीवात्मा लेना चाहिये। जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजी ने भी कहा है–'जीव की ईश समान' जीव ईश्वर के समान नही होता।'

जीव एवं ईश्वर का भेद के समान सब आत्माओं का भी परस्पर भेद ही है, इसमें जिज्ञासा होती है कि–प्रामाणिक लोग प्रमाण से सिद्ध पदार्थ स्वीकृत करते हैं, तो प्रमाण के अभाव होने से प्रतिशरीर में आत्मा का भेद स्वीकार करने के लिये अशक्य प्राय है, जैसे देखिये वाह्यप्रत्यक्षप्रमाण आत्मभेद-साधक नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रत्यक्ष के आत्मप्रकाशन सामर्थ्य के अभाव होने से। यदि कहेंगे कि आन्तर प्रमाण आत्मभेदसाधक होगा सो भी नहीं हो सकता है, आन्तर प्रमाण स्वात्मप्रकाशन समर्थ होता भी है तो भी उसके परमात्मप्रकाशन में सामर्थ्य नहीं है।

एवं अनुमान भी प्रतिशरीर में आत्मभेद का साधन नहीं कर सकता है। लिङ्ग के अभाव होने से सुख दुःखों के प्रति-सन्धान और अप्रतिसन्धान तो आत्माओं के भेद रहने पर भी उपाधिभेद से सिद्ध होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगम भी आत्मभेद का साधक नहीं है। 'अहमेवेदं सर्वम्' यह सब मैं हूं' 'नेहनानाऽस्तिकिञ्चन' इस लोकप्रपञ्च में अनेक कुछ भी नहीं है' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति, जो यहां अनेकसा देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु प्राप्त करता है, 'तस्यात्म पर देहेषु सतोऽप्येकमयं हि तत्। विज्ञानं परमार्थो हि द्वैतिनोऽतथ्यदर्शिनः' अपने और दूसरे के शरीरों में विद्यमान भी वह आत्मा एक ही विज्ञान रूप से है यह तो वास्तविकता है पर द्वैतमतावलम्बिजन अतथ्यदर्शी है, इत्यादि श्रौत स्मार्त वचनों के आत्मा में अभेद विषयकत्व का प्रतिपादन है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि सुखित्व दुःखित्व आदि वैधर्म्य लिङ्गवाले अनुमान से आत्माओं के भेद की सिद्धि होने से आत्माओं का ऐक्य यानी अभेद मानने पर भी उपाधियों के भेद से सुख और दुखों के प्रतिसन्धान और अप्रतिसन्धान तो प्रतिपादन के लिये अशक्य ही हैं, विकल्पों के सहन के अभाव से। वैसे देखिये कि—उपाधि यहां शरीर है अथवा अन्तः करण है ? इन विकल्पों में पहला नहीं हो सकता है। दूसरे शरीर में अनुभूत सुखादि को दूसरे शरीर में प्रतिसन्धान सौभरि आदि में प्रसिद्धि से। अन्तिम अन्तः करण उपाधि है यह पक्ष भी नहीं हो सकता है, किसी को कल्पान्तर में अनुभूत विषय का इस जन्म में स्मरण देखने में आता है एवं 'तन्मनोऽकुरुत' इस वचन से मनोरूप अन्तः करण की सृष्टि के श्रवण से कल्पान्तर में वही अन्तःकरण है यह नहीं हो सकता है। अतः अन्तः करण उपाधि से कार्य सम्पन्न होगा इस पक्ष की मान्यता नहीं रही।

आत्मा के अभेदवादिओं से जो कहा जाता है—कि अप्रशस्तशरीर मुझसे ही आत्मावाले हैं शरीरत्व होने से सम्प्रतिपन्नमच्छरीर वत् यह युक्त नहीं है क्योंकि विकल्प के सहन में अक्षम होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से वैसे सुनिये कि—'मया' इस से क्या विवक्षित है ? अहमर्थ अथवा अहमर्थानुबन्धिनी संवित विवक्षित है। किसी भी शरीर में अहमर्थ को आत्मत्व के रूप में अस्वीकार से साध्य की विकलता पक्ष का अप्रसिद्ध विशेषणत्व 'अनात्मवन्ति' इस प्रतिज्ञा का विरोध तथा अहमर्थ के आत्मत्व के स्वीकार से अपसिद्धान्त भी होता है' इत्यादि दोषों के प्रसङ्ग से आदिम पक्ष नहीं हो सकता है, हम लोगों से तो संवित् को आत्मत्व के रूप से अस्वीकार होने से साध्यवैकल्य अप्रसिद्ध विशेषणत्व और प्रतिज्ञा विरोध आदि दोषों के विद्यमान होने से अन्तीम पक्ष भी नहीं हो सकता है। जो कि 'सर्वोऽप्यात्माऽहमेव चेतनत्वात्-अहमिव' सभी आत्मा मैं हीं हूं चेतनपना के होने से अहम के समान' यह कहा जता है, वह भी अच्छा नहीं है, इस से अहमर्थत्वमात्र के साधन से सिद्ध साधन दोष होजाने से क्योंकि स्वतादात्म्य के साधन में बाध हो जाता है किञ्च ज्ञानाश्रयत्वरूप चेतनत्व के हेतु माने तो स्वपक्ष से ही असिद्धि है तथा दृष्टान्त में साधन वैकल्प भी अनिवार्य है। यदि चिद्रूप को हेतु माने तो। धर्म भूत ज्ञान से ऐकात्म्य होता है। इस प्रकार से दूसरे भी वादियों से प्रयुक्त अनुमान प्रयोग निरसनीय हैं। सभी आत्मा के अभेद साधक अनुमानों का 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्' नित्यों में नित्य एवं चेतनों में भी चेतन है' इत्यादि श्रुति विरोध तो अपरिहार्य है ही।

'अहमेवेदं सर्वम्' मैं ही यह सब हूं'' इत्यादि श्रुति में तो परमात्म शरीर वाचक 'अहमात्मा' इत्यादि शब्दों का शरीर परमात्मा में ही पर्यवसान है : 'नेह नानाऽस्ति' इत्यादि श्रुति में तो सबके ब्रह्मात्मक भिन्न का ही निषेध किया जाता है। इस कारण से कोई भी अनुपपत्ति नहीं है।

'तस्यात्मपरदेहेषु' इत्यादि से तो आत्माओं का द्वैत निषेध नहीं होता है। किन्तु देवादिदेहों के वैषम्य होने पर भी कर्म से उन उन देहों से विशिष्ट आत्माओं के ज्ञानाकारसे समानत्व ही प्रतिपादित होता है। अपने देह में और दूसरे के देहों में विद्यमान जीवात्मा का जो स्वरूप विद्यमान है विज्ञानरूप वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक प्रकार से वास्तविक स्वरूप है। द्वैती लोग स्वपरदेह भेद से मैं ब्राह्मण हूं और स्थूल गौर हूं, यह शूद्र है कृश पतला है यह श्यामवर्ण है, इत्यादि रूप से वैषम्य देखनेवाले असत्यदर्शी और भ्रात है। यह 'तस्यात्मपरदेहेषु' इत्यादि श्लोक का अर्थ हैं। और भी देखें आत्माओं के भेद का अभाव मानने पर गुरु शिष्यों की व्यवस्था का भङ्ग भी हो जायगा। वह इसप्रकार से होता है सुनिये—शिष्यत्व के रूप से किसी शिक्षणीय को पाकर अथवा विना पाये ही आचार्य उपदेश करता है? आद्यपक्ष में अपने से भिन्न को अथवा अभिन्न को उपदेश करता है? इन दोनों में से पहले भिन्न पक्ष में सत्य अथवा असत्य अपने से भिन्न को उपदेश करता है। इन पक्षों में से सत्यत्व पक्ष नहीं हो सकता है अपसिद्धान्त हो जाने से अन्तिम असत्य पक्ष में उस असत्य के मिथ्यात्वेन प्राप्त होने पर उसके लिये उपदेश का असम्भव है। सत्यत्वेन उपलम्भ मानेतों भ्रान्त होने से आचार्य का ही आचार्यत्व की हानि हो जायेगी। अभिन्नत्व पक्ष मानें तो अपने से अभिन्न शिष्य को किस प्रकार से उपदेश दिया जायगा। अनुपलभ्य इस पक्ष की तो और भी दुर्दशा है किस को उपदेश करेगा शिक्षणीय व्यक्ति तो मिला ही नहीं।

इस प्रकार से आत्माओं के भेद को अस्वीकार करने पर बद्ध और मुक्तों की व्यवस्था का भङ्ग भी हो जायगा। यहां जिज्ञासा होती है कि प्रतिकल्प में यदि एक भी आत्मा की मुक्ति होगी तो वीते हुए अनेक कल्पों में सब आत्माओं के मुक्त होने पर अनन्तात्मवाद में भी बद्ध मुक्तव्यवस्था कैसे होगी? ऐसा यदि कहेगे सो ठीक नहीं है क्योंकि अनन्त घटों के नष्ट होने पर भी दूसरे घटकी अवस्थिति जैसे होती है वैसे अनन्त जीवों के मुक्त होने पर भी जीवों के अनन्तत्वातिशय से दूसरे जीव के बन्धन की सिद्धि होने से बद्ध मुक्तव्यवस्था का भङ्ग नहीं होता है। यहां एकात्मवादी को भी तो कहना चाहि कि—इससे पहले मोक्ष के अभाव में कौनसा कारण है? हेतु का अनागमन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही कारण है । ऐसा यदि कहेंगे तो वही अनेकात्मवाद में भी अवशिष्टआत्माओं के मोक्षाभाव में कारणत्व से स्वीकृत करने से उक्तदोष का प्रसङ्ग नहीं होगा । । क्योंकि–मुक्ति में हेतु तो भक्ति है दूसरा नाम जिसकी ऐसी तैलधारा सी अनवच्छिन्न स्मृति की सन्तति ही है । कहा भी है साधनदीपिका में आचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजीने–

रामस्य ब्रह्मणोऽनन्य भक्त्यैव मुक्तिराप्यते ।
भक्तिर्ध्रुवा स्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात् ।।

पर ब्रह्म श्रीरामजी की भक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है । वह भक्ति निश्चल रूपा स्मृति ही है । वह विवेकादिक सात यानी विवेक विमोक अभ्यास क्रिया कल्याण अनवसाद एवं अनुद्धर्ष रूप समुदाय से होती है इन साधनों का विशेष विवरण मेरे अन्य व्याख्यानों ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्य विवरण तथा श्रीवैष्णवमताब्जभाष्यकार टीका प्रभा-किरण एवं श्रौतार्थ संग्रह आदि में है अतः वहीं देखें ।

भगवान् श्रीदेवानन्दाचार्य चरणों ने भी उसी तरह कहा है

त्वदीया स्मृतिस्तारिका मृत्यु सिन्धो
स्तथा विस्मृतिः पातिका तत्र चैव ।
परं योगिनां हार्दमालम्बनं त्वां
श्रये राघवं संच्चिदानन्दरूपम् ।।

श्रीरामजी आपकी स्मृति मृत्युसागर से तारने वाली है, और विस्मृति उस मृत्यु सिन्धु में गिरा देने वाली है । योगियों के उत्कृष्ट हृदय सम्बन्धी अवलम्बन रूप आप सच्चिदानन्द रूप श्रीरामजी की सेवा किया करता हूं ।

पुनः यहां जिज्ञासा होती है कि सब आत्माओं के आत्मत्व स्वरूप से समानतया रहने पर भी श्रीहनुमदादि नित्य मुक्त हैं और दूसरे नित्य मुक्त नहीं है इस में क्या नियामक है ? इसका स्पष्टीकरण सुनिये–ईश्वर के जैसा संसारित्व के प्रयोजक कर्मों का अभाव ही श्रीहनुमदादि नित्य मुक्तों के नित्य मुक्तत्व में नियामक होने से संसारिता नहीं है दुसरे के तत्परक कर्म के अभाव नहीं होने से नित्य मुक्तपना नहीं है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ सिंहस्थ १९९२ ॐ

श्रीयुत आचार्य प्रवरजी सादर दण्डवत् ।

उज्जैन में वार्ता प्रसंगमें अमृतकलश के विषय में जिज्ञासा की थी । आपने वार्ता को दूसरे प्रसंग में मोडकर मूल प्रसंग को अन्तर्हित कर दिया था । पीछले दो माहके अंकों में उज्जैन प्रसंगों को पढकर आशा हुई कि हमारी जिज्ञासा का भी स्पष्टीकरण हो जायेगा । तदर्थ स्मारिका लिख रहा हूं । आशा है हमारी जिज्ञासा को शांत कर देंगे । आप का ही रामशरण

प्रकृत प्रसंग में अमृतपान कर अमर होने की अभीलाशा कम होने से वार्तान्तरित कर रहा था क्योंकि समाज की साहित्य विषयक सेवा करने की तमन्ना अभी बनी हुई है । तदर्थ निगूहित ही रखना चाहता था आपने स्मारिका भेजी तोभी मैं अपने मत को प्रकट करने के अपेक्षा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के प्रखर प्रहरी समीक्षा सम्राट् दर्शन केशरी श्रीवैदेहीकान्तशरणजी का विचार व्यक्त किये देता हूं । आशा है इससे अमृत कलश विषयक आपकी जिज्ञासा शान्त करने में सहायता मिलेगी–

ॐ अमृत कलश में विष विन्दु ॐ

ले० समीक्षासम्राट् दर्शनकेशरी वैदेहीकान्तशरणजी

अमृत कलश पृ. ४१–४३ में प्रो.राममूर्ति त्रिपाठी का स्वामिवर्य श्रीरामानन्दजी का दार्शनिक चिन्तन शीर्षक लेख प्रकाशित है, जिसमें–

पाश्चात्य और पौरस्त्य दर्शनों की मीमांसा करते हुये लिखा गया है–"पाश्चात्य "फिलासफी" विद्यानुराग मात्र है और पौरस्त्य दर्शन है, अपरोक्षानुभूति है–"साक्षात् अपरोक्षानुभूति" चरम तत्त्व का ही दूसरा नाम "साक्षात् अपरोक्षानुभूति" है । श्रुति कहती है–"यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म"–अपरोक्षमित्यर्थः"—साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म तत्त्व ही मुख्यतः "दर्शन" है । पाश्चात्य दर्शनसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पौरस्त्य दर्शन का दूसरा व्यतिरेक यह है कि वहां 'मिथ्या लौजी और "फिलौसफी" जबकि दोनों यहां अपृथक् है।" परन्तु यह कथन सर्वथा सत्य नहीं है। फिलासफी शब्द का केवल शब्दार्थ विद्यानुराग है, न कि विवेच्य विषय। मेटाफिजिक्स (तत्त्व विज्ञान) लौजिक (तर्कशास्त्र), साइकोलाजी (मनोविज्ञान) और इथिक्स (नीति शास्त्र)–ये सभी फिलासफी के अन्तर्गत विषय हैं। इसी प्रकार प्रमाण शास्त्र, प्रमेय शास्त्र, आचार शास्त्र दर्शन के अन्तर्गत विषय हैं। यह दूसरी बात है कि इन विषयों को पाश्चात्य फिलासफी में अलग अलग पुस्तकों में निरूपण है, जबकि न्याय दर्शन, वेदान्त दर्शन आदि दर्शनों में एक ही पुस्तक में। परन्तु एक ही पुस्तक में इन विषयों को होने या इन विषयों के लिये पृथक् पृथक् पुस्तक होने से कोई तात्त्विक भेद नहीं है। दोनों ही दर्शन विद्यानुराग हैं। परन्तु विद्यया अमृत मश्नुते सा विद्या या विमुक्तये' के अनुसार आस्तिक दर्शन का उद्देश्य परमात्म दर्शन और आत्यन्तिक दुःखोच्छेद एवं शाश्वत आनन्द की प्राप्ति है, वहां अन्य दर्शनों का उद्देश्य केवल बौद्धिक सन्तुष्टी है, मानसिक खुजलाहट की सन्तुष्टी। परन्तु आस्तिक और नास्तिक पाश्चात्य एवं पौरस्त्य–दोनों ही दर्शनों में हैं।

साक्षात् और अपरोक्ष दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। अतः "साक्षात् अपरोक्षानुभूति' शब्द युक्त नहीं है और पुनरुक्ति दोष पूर्ण है। इसीप्रकार "चरम तत्त्व का ही दूसरा नाम "साक्षात् अपरोक्षानुभूति है" कथन ठीक नहीं है "चरम तत्त्व" नाम सत्व प्रधानानि' नामानि है और 'अनुभूति' आख्यात भाव प्रधानम् आख्यातम। चरम तत्त्व संज्ञा है और अनुभूति क्रिया। अतः दोनों एक नहीं हैं। श्रुति ने यत्साक्षाद परोक्षाद्ब्रह्म कहा है इसे लेखकजी ने नहीं लिखा है। फिर यह कथन कि 'साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म ही मुख्यतः दर्शन है' भी भ्रान्त है। अपरोक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्म दर्शन का विषय है, दर्शन कार्य (क्रिया) नहीं अतः उक्त वाक्य में "साक्षात् ब्रह्म ही मुख्यतः दर्शन है" के स्थान पर" साक्षात् ब्रह्म ही मुख्यतः दर्शन का विषय है" लिखना चाहिए था।

फिर लिखा गया है–"स्वामीजी का दार्शनिक चिन्तन सामान्यतः रामानुजीय ही माना जाता है पर जबसे रामानन्दसम्प्रदाय रामानुज सम्प्रदाय से स्वतन्त्र होने का उद्‌घाटन हुआ है तबसे स्वामी रामानन्द के नाम से अनेक ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं– जिनमें से सर्वाधिक निर्विवाद "रामार्चन पद्धति" एवं "वैष्णव मताब्ज भास्कर" हैं।

परन्तु यह कथन सर्वथा भ्रान्त है कि स्वामीजी का दार्शनिक चिन्तन रामानुजीय ही माना जाता है। वस्तुतः जगदाचार्य का दार्शनिक चिन्तन श्रीराम परत्व विशिष्टाद्वैत वृत्तिकार बोधायनानुसारी अपने सम्प्रदायाचार्योपदिष्ट स्वचिन्तन ही है श्री नारायण विशिष्टाद्वैत रामानुजीय चिन्तन नहीं। श्रीरामानुजजी का चिन्तन ही श्रीबोधायन सिद्धान्तानुसरी (जैसा कि उन्होंने स्वयं स्पष्ट रूप से अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के आरम्भ में लिखा है "भगवद्बोधायन कृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः, तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते") अतः श्रीरामानन्दाचार्यजी के चिन्तन को रामानुजीय चिन्तन कहना विपरीत बुद्धि और उल्टी खोपडी की ही उपज हो सकता है। इन मति भ्रम (जाको मति भ्रम भयउ खगेशा। सो कह पश्चिम उगेउ दिनेशा॥) वालों को श्रीरामानुयाचार्यजी के ही वाक्यों को पढकर अपने मगज का सुधार या इलाज कर लेना चाहिए और 'घृताधारे पात्रं वा पात्राधारे घृतम्' का विवेचन कर लेना चाहिए कि श्रीरामानन्द सम्प्रदायाचार्य के वेदांत सिद्धांत पर श्रीरामानुजजी का वेदांत सिद्धात आश्रित है कि श्रीरामानुजजी के वेदांत सिद्धांत पर श्रीरामानन्दाचार्यजी का वेदांत आश्रित है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह कथन भी सर्वथा भ्रान्त है कि रहस्योद्घाटन के बाद श्रीरामार्चन पद्धति और श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर प्रकाशमें आये हैं। ये ग्रन्थ रहस्योद्घाटन के बहुत पूर्व से ही प्रकाशित हैं। इसीप्रकार के तथ्य विरुद्ध लेखों को पढने से लोगों को भ्रान्ति होती है'

पृ. ४२ में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तात्त्विक प्रश्न का उद्घाटन करते हुये लिखा गया है कि-"यदि मूल तत्त्व चिद्-चिद् विशिष्ट ही है तो पुरुषकार स्वरूपा सीता तत्त्व का समावेश कहां होगा ? वह अचित् प्रकृति नहीं है-नित्य भिन्न जीव भी नहीं है वह तो श्रीपद वाच्यपुरुषकार स्वरूपा श्रीरामजी अभिन्न शक्ति है। इसे रामरूप ब्रह्म की स्वरूप भूत शक्ति ही मानना पडेगा। इस स्थिति में रामानुज सम्मत चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म से एक करते हुये स्वरूप शक्ति भूता सीता को कहां माना जाये ? निश्चय ही चित् तथा अचित जैसे आवश्यक सिद्ध विसेषणों से भिन्न सीता को ईश्वराश्रित चिदानन्दमय ही मानना होगा ? क्या रामानुज सम्मत "विशिष्टाद्वैत" में इस तत्त्व का समावेश है ?

परन्तु उक्त तात्त्विक प्रश्न का उत्तर "सीता को ईश्वराश्रित चिदान्दमय ही मानना होगा' वाक्य भ्रान्त है। श्रीसीताजी ईश्वराश्रित नहीं है। आश्रयाश्रयी सम्बन्ध भेद में होता है। श्रीसीताजी ईश्वर से भिन्न नहीं हैं, प्रत्युत ईश्वर ही हैं। श्री सीताजी ही श्रीरामजी हैं और श्रीरामजी ही श्रीसीताजी है। ये दो नहीं हैं, नितान्त एक हैं और एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। वेद कहते हैं-"त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी-अथर्व० १०।८।२७'' । वेद ने ब्रह्म को नपुंसक लिङ्ग (तत्), स्त्रीलिङ्ग (सा) एवं पुल्लिग (स) में एक साथ व्यवहार किया है 'तदेवाग्नि स्तदादित्यः तद्वायुस्तदु चान्द्रमा 'तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ शु.या. ३२।१॥' निरुक्त ने कहा है 'यो देवः सा देवता। सन्त श्रीतुलसीदासजी ने लिखा है-'गिरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरथ जल विचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न । वन्दौं सीताराम पद जिनहिं परम प्रियखिन्न ।। मैथिली महोपनिषद् में कहा है– 'नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम । मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमारमाम ।।" "श्रीसीतारामाय नमः' का प्रयोगभी एकत्व के कारण ही होता है । श्रीसीतोपनिषद् में "इच्छा ज्ञान क्रिया शक्ति त्रयं यद् ब्रह्म साधनम । तत सत्ता सामान्यं सीता तत्त्व मुपास्महे ।।" कहा गया है । अतः चिद् अचिद् ब्रह्म में श्री सीता साक्षात ब्रह्म होने से इनका पृथक् उपदेश नहीं किया गया है । श्रीरामानुज सम्मत विशिष्टाद्वैत में इस तत्त्व का समावेश इसलिए नहीं हो सकता कि श्रीरामानुज का तेलङ्गवर्ग श्रीलक्ष्मी को अणु रूप मानता है और अणु जीव का स्वरूप है । अतः उनके यहां लक्ष्मी जीव कोटि में है और श्रीमद्वाल्मिकि रामायण जो उनका भी ज्ञेय है के—"अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा' एवं "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा" वाक्यों के अनुसार भी श्रीसीताजी विभु एतावता ब्रह्म कोटि में हैं । अतः श्रीरामानुज सम्मत विशिष्टाद्वैत्त में भी श्रीसीता तत्त्व का ब्रह्म कोटि में समावेश मानना ही पडेगा, परन्तु अणु रूपा लक्ष्मी का नहीं ।

पृष्ठ ४३ में लिखा है–"चेतन अचेतन का ब्रह्म में स्वगत भेद है, परन्तु श्री अर्थात् सीता के साथ भेदाभेद है

परन्तु यह कथन भी भ्रान्त है । भेद तीन प्रकार के होते हैं–१ विजातीय, पशु औ वृक्षका भेद । (२) सजातीय जैसे श्वेत कमल का रक्त कमल से भेद और ३ स्वगत, जैसे हाथ का पैर से भेद । चेतन का ब्रह्म से स्वगत भेद नहीं है । प्रत्युत सजातीय भेद है इसीप्रकार अचेतन का ब्रह्म से स्वगत भेद नहीं प्रत्युत विजातीय भेद है । इसीप्रकार ब्रह्म का श्रीसीताजी के साथ भेदाभेद नहीं है, प्रत्युत अभेद है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशा है विज्ञ लेखक अपने लेख पर पुनर्विचार करने का कष्ट करेंगे।

श्री स्वामी रामानन्दाचार्य और श्रीमठ परम्परा शीर्षक लेख में श्री कुलदीप नारायण झड़पजी ने परम्परा की एक कडी ी नहीं लिखी है। अतः शीर्षक निरर्थक है और लेखशीर्षक बाह्य। पृ—४० में इन्होंने लिखा है-श्रीमठ स्मारिका प्रकाशित हुई जो श्री सम्प्रदाय के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण संग्रहणीय संकलन है।"

परन्तु वस्तुतः श्रीमठस्मारिका में अधिकतर ऐसे लेखों का संग्रह है जो श्री सम्प्रदाय के विघातक एवं खण्डनीय हैं तथा उसका खण्डन "श्रीमठस्मारिका समीक्षा" में किया गया है अतः उन्हें "संग्रहणीय संकलन" के स्थान पर "प्रत्याख्यानीय संकलन" या 'परिमार्जनीय संकलन' लिखना ही उचित था।

अग्रपीठाधीश्वर स्वामी राघवाचार्यजी महाराज ने अपने "श्री मठ का वर्तमान एवं भविष्य" शीर्षक लेख के पृष्ठ ५१में लिखा है कि—"श्रीमठ से वियुक्त हुये कबीरदासीय, रविदासीय, गरीब दासीय, रामस्नेही प्रभृति विभिन्न परम्परा के लोगों ने इस सेतु का समाश्रयण कर अपने मञ्जिल को सुलभ बनाने का संकल्प लिया और एक वैष्णवता वितान की छाया में अपनी आध्यात्मिक क्रिया कलापों का कार्यान्वयन करना आरम्भ कर दिया" परन्तु यह कथन सर्वथा असम्भव और भ्रान्त है। एक ही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय से निकले उपरोक्त पंथों में परस्पर एवं श्रीरामानन्द सम्प्रदायके साथ भेद ही नहीं अपितु इतना विरोध है कि इनका परस्पर और श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के साथ समानाधिकरण्य हो ही नहीं सकता है—'समानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः। श्रीकबीर बाबा ने सभों को फटकारते हुये स्पष्ट शब्दों में कहा है—"मेरा तेरा मनमा कैसे एक होई रे। मैं कहता आंखों की देखी, तू कहता कागद की लेखी। पुनः "पाहन पूजे हरि मिले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो मैं पूजूं पहार । ताते तो चाकी भली पीस खाये संसार ॥ वाले मूर्तिपूजा आलोचक एवं विरोधी का मूर्तिपूजकों के साथ समन्वय, सामञ्जस, और समानाधिकरण्य कैसे होगा ? यह तो तभी होगा जब या तो हम भी उन्हीं की सुर में सुर मिलाकर मूर्तिपूजा की आलोचना करें और मूर्ति पूजा छोड दे या वे ही मूर्तिपूजा की आलोचना छोड कर मूर्ति पूजक बन जायें । परन्तु दोनों में कोई भी सम्भव नहीं है । अतः इस सेतु के समाश्रयण की बात भारत सरकार के हिन्दू मुस्लिम एकता की वार्ता के समान कोरी कल्पना और असम्भव है । उनसे हमारा केवल इतनाही सम्बन्ध है कि वे सभी हम हीं से निकले हैं और सभी वैष्णव हैं । हमारा हीं सम्प्रदाय उनका मूल है एतावता हम हीं उनके गुरु हैं, चाहे वे ऐसा मानें अथवा नहीं मानें । परन्तु मान न मान मैं तेरा मेहमान । हम उनके गुरु हैं । सच तो यह है कि हम उनकी पंगत में भोजन भी नहीं करते । तब उपरोक्त कथन बाल सम्मोहन के अतिरिक्त क्या है ? पुनः सभों के संमिश्रण से एक पुगल पंथ (खीचडी पंथ) ही बन सकता है, कोई सम्प्रदाय बना नहीं रह सकता । लगता है अपने ज.गु. को समर्थन कराने के ये सब वञ्चनात्मक हथकण्डे हैं ।

इसी प्रकार पृष्ठ ५२ में लिखते है—"जहां रामानन्दीय वैष्णव भी अपने आचार्य के सम्मान में शङ्कराचार्य की जय बोला करते थे, वहीं आज शैव मतालम्बी श्री वर्तमान श्रीमठ पीठाधीश्वर वैष्णवाचार्य का सान्निध्य एवं सदुपदेश प्राप्त कर अपने को धन्य मान रहे हैं । फलतः श्रीमठ के शिखर पर पुनः भारतीय समाज की एकता भारत की अखण्डता एवं "सिया राम मय" जगत् की भावदृष्टि का अखण्ड दीप प्रज्ज्वलित हो गया है । भविष्य में वर्तमान आचार्य को भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा एवं क्षेत्रियता के संकीर्ण पाश में आवद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय मनीषा को मुक्त कराकर भारतके प्रत्येक निवासी में मानवता वैष्णवता और अखण्ड भारत में नागरिकता की भावधारा प्रवाहित करना होगा"

परन्तु यह कथन सर्वथा भ्रान्त है। श्रीरामानन्दीय वैष्णव कभी भी अपने आचार्य के सम्मान में शङ्कराचार्य की जय नहीं बोलते थे और न बोलना सम्भव ही था। सत्यता तो यही है कि जिस प्रकार शैवदर्शन अद्वैतवाद श्रीवैष्णवों के विशिष्टाद्वैत आदि वस्तुवादी दर्शनों का प्रतिभट था और है, उसी प्रकार शैव वैष्णवों के प्रतिभट नहीं अपितु प्राणघातक भी रहे हैं। फिर अपने आचार्य के सम्मान में प्रतिभट का जयकार कोई मस्तिष्क फिरा व्यक्ति ही बोल ने का सोच सकता है। दक्षिण भारत में अभी भी शैवों का वैष्णवों के साथ कलह हो ही रहा है अतः शङ्कराचार्यजी की जय बोलने की बात विश्वसनीय नहीं है। अभ्युगम सिद्धान्तानुसार यदि थोडी देर के लिये इसे मान भी लिया जाये तो उसकी तुल्ययोगिता में उसी प्रकार शैवों को अपने आचार्य के सम्मान में श्रीरामानन्दाचार्यजी का जय बोलना होता और पं. रामनरेशाचार्यजी बोलवाते तो एक बात होती, परन्तु यहां तो उनके सान्निध्य लाभ और उपदेश ग्रहण कर धन्य मानने की बातलिख रहें है और यह भी भ्रान्त है वहां सान्निध्य लाभ करने वालों में दो हीं प्रकार के व्यक्ति हो सकते हैं— एक जो उनके पूर्व शैव संन्यास जीवन के सहपाठी या मित्र रहे हों अथवा भोजन भट्ट हों और उपदेश ग्रहण के लिये नहीं प्रत्युत क्षुधा तृप्ति के लिये जाते हों, तथा दूसरे वे जो उनको पुनः शैव सम्प्रदाय में वापस ले जाने का प्रयास करने वाले है इनसे दीक्षा करने वाला कोईभी शैव नहीं गया है और न ये किसी शैव को श्रीरामानन्दीय वैष्णव बना सके हैं। यह भी कटु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्य है कि गीताधाम जवलपुर के समारोह में शङ्कराचार्यों के प्रवचनों के सामने पं. श्रीरामनरेशाचार्यजी एवं पं. श्रीरामभद्राचार्यजी फीके रहे । शङ्कराचार्यों के प्रवचनों में ही श्रोताओं का वाहुल्य होता था । ऐसा समाचार पत्रों एवं गौरवज्योति से भी ज्ञात है । फिर किस विशेषता और आकर्षण से शैव इनके उपदेश ग्रहण के लिए इनका सान्निध्य का लाभ करने और अपने को धन्य मानने श्रीमठ जाते हैं । काशी तो शैवों की नगरी है और वे वैष्णवों की कोई गणना ही नही करते । श्रीराम मन्दिर के प्रकरण में भी शैव वैष्णवों को तुच्छ वतलाते हुए मानस मन्दिर के प्रकरण में शैव वैष्णवों को तुच्छ वतलाते हुए मानस तत्त्वान्वेषीजी को कहे कि श्रीराममन्दिर के लिये हम शङ्कराचार्य एवं शैव ही आगे हैं । फिर काशी के शैव अपने आचार्यों पं. रामनरेशाचार्यजी का उत्कर्ष मानकर उनसे वैष्णव धर्म का उपदेश लेने जाते हैं, ऐसी वातें केवल सुन लेने भर की भी नहीं है । स्वामी श्रीराघवाचार्यजी के उपरोक्त वाक्य समूह राजनैतिक नेताओं के भाषणों का टेपरिकार्ड से अधिक कुछ भी नहीं है । जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्रियता आदि के विरुद्ध प्रलाप करना और वात है और इसका समन्वय करना और वात । क्या इनके वाक्य 'अखण्डभारत में नागरिकता क्षेत्रियता नहीं है । उदार चरितनां तु वसुधैव कुटुम्वकम् । हम सर्वे भवन्तु सुखिनः" कहने वाले हैं "भारतीया भवन्तु सुखिनः" कहने वाले नहीं । यही व्यापकता का विषय और अर्थ है । स्वामी राघवाचार्यजी को नेपाल की नागरिकता की चिन्ता नहीं हुई । जो हो सम्प्रदाय को संकीर्ण तथा पाश कहने से यह स्पष्ट होता है कि पं. श्रीरामनरेशाचार्यजी सभी को मिटाकर भारत सरकारी धर्मनिरपेक्षता का पाठ पढानेवाले गुरु हैं । और सम्प्रदाय मिटाने के लिये प्रथम अपने सम्प्रदाय को ही मिटाना होगा । परन्तु एक ओर वे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का ज.गु. वनने का दुःप्रयास कर रहे हैं और दूसरी ओर सम्प्रदाय मिटाने का भी । परन्तु दुई कि एक संग होइ भूआलू ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हंशच ठठाई फुलायब गालु । दुविधा में दोउ गये माया मिली न राम ।" किसी उर्दू कवि ने इसी असमञ्जस को कहा है– एत तरफ कहरे खुदा है 'एक तरफ है माहरू । इस दो तरफी आग में कैसे बचेगी आबरू । हो सकता हैं भारत सरकार ने ही इन्हें धर्म निरपेक्षता आदि के ज.गु. बनने का प्रपञ्च किया हो, क्योंकि श्रीमठ स्मारिक में भी इनके अनुशंसा लेखक भारत सरकार के तत्कालीन शिक्षा मन्त्री श्रीललितेश्वर प्रसाद शाही प्रभृति एवं निबन्ध लेखकों में अधिक प्रोफेसर प्रभृति ही थे जो अपने लेखों में इन्हीं तथ्यों को किसी न किसी रूप में लिखे । स्वामी राघवाचार्यजी प्रकृत लेख में अछूतोद्धार की बात लिखे हैं । पर वे स्वयं आजतक क्या अछूतोद्धार किये हैं यह नहीं बतलाये हैं ।

पृ. ५३ में लिखते हैं–"श्रीमठ अपने अनुयायियों को पञ्च संस्कार की दीक्षा तक ही सीमित न रखकर उन्हें संस्कृत भाषा तथा उससे निबद्ध समस्त सद्ग्रन्थों को पढने पढाने के लिये प्रोत्साहित करता है ।

परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि आज तक श्रीमठ ने कितने संस्कृत महाविद्याय और विद्यालय कहां कहां खोले हैं, कितने विद्यार्थी वहां पढते हैं । कितने शास्त्री आचार्य बनाये । कितने और कौन कौन संस्कृत ग्रन्थ लिखे ? इन सबों के अभाव में उक्त कथन कथन मात्र ही लगता है"

पृ. ५३ में ही आगे लिखते हैं—"ऐसी संस्थाओं का संस्थापन संकल्पित है, जहां आध्यात्मिक संस्कार की आधारशिला पर भौतिक शिक्षा देने की व्यवस्था होगी । फलतः अगला भारत विश्व मञ्च पर श्रेय के साधनों में ही नहीं प्रत्युत जीवनोपयोगी भौतिक साधनों के सङ्कल्प में किसी के पीछे नहीं रहेगा ।

परन्तु यह कथन व्याघतापूर्ण असम्बद्ध एवं अप्रामाणिक है । भौतिकवाद और आध्यात्मवाद परस्पर विरुद्ध है । भोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और त्याग में विरोध है। श्रेय और प्रेय में विरोध है–इसको जानने के लिए न्यायसूत्र ४।२।३। का वात्स्यायन भाष्य एवं वाचस्पति मिश्र की तात्पर्यटीका में निमित्त संज्ञा तथा अनुव्यञ्जन संज्ञा तथा अवयव संज्ञा और अशुभ संज्ञा का विस्तृत निरूपण पढ़ें, एवं कठोपनिषद् १।२।१–२ अन्याच्छ्रेयोऽन्यदुतैवप्रेय–स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रियो मन्दो योग क्षेमाद् वृणीते ॥ आदि का श्रीमदानन्दभाष्य प्रभृति सद्ग्रन्थों का अध्ययन करें। यदि नचिकेता–'इमा रामाः सरथा सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः, आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व '१।१।२५' को ठुकराता नहीं तो वह श्रेय की प्राप्ति कर ही नहीं सकता था, भौतिक शिक्षा शरीर प्रेम और सांसारिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती है। मस्तिष्क में वितर्क बाद उत्तपन करती है अतः इस बाध के प्रतिकार के लिये इसके प्रतिपक्ष भावनम् का उपदेश योग सूत्र में दिया गया है। परन्तु आश्चार्य है कि श्रीमठ आध्यात्मिक संस्कार आधार शिला पर भौतिक शिक्षा देने की असङ्गति पूर्ण उल्टी वार्ता सोच रहा है।

अमृतकलश में डा० निधीन्द्र प्रसादशर्मा का भारतीय सन्त परम्परा में स्वामी रामानन्द' शीर्षक लेख के पृ. ३१–३२ में जो स्वामीजी का अवतार काल निर्णय किया गया है, वह ठीक है। पृ. ३३ में लिखा है कि उन्हों ने अद्वैत वेतान्त का भी अध्ययन किया। यह भी ठीक है। यहां प्रयुक्त "भी" शब्द अतिरिक्त वाचक ठीक हैं। परन्तु मुख्य विशिष्टाद्वैत वेदान्त का नाम भी वहां होना आवश्यक था। पृ. ३५ में लिखा है कि 'रामानन्दजी की हिन्दी रचनाओं "योगचिन्तामणि" 'ज्ञान तिलक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"रामरक्षा स्तोत्र" आदि योगसम्बन्धी कृतियों के अतिरिक्त कुछ फुटकर पद भी उनके नामसे जोडे जाते हैं।" यहां "उनके नाम से जोडे जाते हैं" पद योजना से स्पष्ट है कि ये उनकी रचनाएं नहीं है। इन्होंने और भी स्पष्ट लिखा है कि–उक्त योग सम्बन्धी रचनाओं को स्वामीजी की रचना मानने में कई विद्वानों ने शंका व्यक्त की हैं। इससे और भी सिद्ध होता है कि ये स्वामीजी की रचनाएं नहीं है। वस्तुतः प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जी ने हिन्दीभाषा में कोई पुस्तक लिखा ही नहीं है।

ψ

अमृतकलश के पृष्ठ ४७ डा॰ राजीवरंजनसिंहजी ने लिखा है कि—"वेदान्त समाज तव तक अपने मूल से काफी दूर हो चुका था। अतः उनमें अनेक वर्जनाएं उभर कर आयी थीं। यह सही है कि निषेध विधि से कम महत्त्व पूर्ण नहीं होता है। क्योंकि विधि जहा लक्ष्योन्मुख करती है वही निषेध लक्ष्य विमुख होने से बचाता है।"

परन्तु लेखक का यह कथन स्वविरुद्ध और परस्पर व्याघापूर्ण है। अतः स्वतः अप्रामाणिक है। सर्व प्रथम लेखक का यह वाक्य कि निषेध विधि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता है," इस लिए भ्रान्त है कि इसमें निषेध को विधि के तुल्य महत्त्व पूर्ण ही बताया गया है। जबकि निषेध विधि के बराबर महत्त्वपूर्ण नहीं प्रत्युत–"निषेधाश्च बलीयांसः" नियम से निषेध विधि से अधिक बलवान् और महत्त्वपूर्ण होता है। अतः यह अधार वाक्य त्रुटिपूर्ण एतावता भ्रान्त है। पुनः लेखक का यह वाक्य कि–"निषेध लक्ष्य विमुख होने से काफी दूर हो चुका था अतः उनमें अनेक वर्जनायें उभर आयी थी" का खण्डन करता क्योंकि लेखक के ही इस सिद्धान्त कि "निषेध लक्ष्य विमुख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होनेसे बचाता है" से ही अनेक वर्जनाओं (निषेधों) का उभर कर आना" मूल से दूर होने का खण्डन करता है और लक्ष्य (मूल) से विमुख (दूर) होने से बचाता ही है। अतः अनेक वर्जनाओं का उभरकर आना मानते हैं तब अपने मूल से काफी दूर या दूर हो जाने की बात खण्डित हो जाती है और यदि अपने मूल से काफी दूर या दूर होने की बात मानते हैं, तब वर्जनाओं के उभर कर आने की बात खण्डित हो जाती है। अतः परस्पर अन्तर्घात या व्याघात है। अत "वेदांत समाज तब तक अपने मूल से काफी दूर हो चुका था" वाक्य लेखक के द्वारा उपस्थापित हेतु से ही गलत सिद्ध है।

केवल पृष्ठ १८ में अमृत कलश के सम्पादक प्रो० नागेन्द्र नाथ उपाध्यायजी को "युग प्रवर्तक आचार्य रामानन्द" शीर्षक लेख है जो अमृत कलश में अमृत के बून्द कहे जा सकते हैं परन्तु उस में भी कुछ त्रुटि है जो स्वाभाविक है। फिर भी मैं सम्पादकजी की प्रशंसा करता हूं और इस पुस्तक में छपे लेखों में व्यक्त विचारों से अपने को अलग रक्खा है। इस बुद्धि कौशल्य के लिये सहारना करता हूं।

५ आशीर्वाद या सर्प का दांत ५

"आशीर्हिताशंसाहिदंष्ट्रयोः–अ.को. ३।३।२२९' 'इस शब्द कोष वचनानुसार 'आशीः' शब्द के आशीर्वाद और सर्पदन्त– ये दो अर्थ होते हैं। आशीर्वाद हितकारक होता है और सर्पदन्त अनिष्टकारक किंवा मृत्युकारक। क्योंकि आशीर्वाद में अमृत और सर्पदन्त में विष रहता है। प्रकृत 'आचार्याशीः' आशीर्वाद रूप अमृत है या सर्पदन्त रूप विष ? इसकी गवेषणा इनके पङ्क्तियों के अध्ययन से ही होती है, जो इस प्रकार है—

(१) "अमृत कलश का प्रकाशन विजातीय आह्लाद प्रद है" 'विजातीय' पद में वि का अर्थ 'सद् इत्येकी भावम् वि अप इत्ये-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्य प्रतिलोम्यम्–नि०"नि०' के अनुसार विपरीत या विरुद्ध होता है, जैसे विवदन्ति का अर्थ विपरीतं वदन्ति होता है। जाति का अर्थ 'जातिः सामान्य जन्मनोः-अ॰को॰३।३।६८' सामान्य (गोत्वादि) और जन्म होते हैं। यहां वाक्य में प्रयुक्त विजातीय पद अमृत कलश का विजातीय प्रकारक माना जाय अथवा आह्लाद का ? यदि अमृत कलश को विजातीय कहा जाये तो तात्पर्य होगा विषकलश और यदि आह्लाद का विजातीय कहा जाये तो तात्पर्य होगा दुःखान्त–विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् । परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् । परन्तु दोनों ही अर्थों में यह आशीर्वाद न होकर सर्पदन्त ही है। यदि यह आत्मत्व सामान्य (जाति) अनुकूल (सम जातीय या सजातीय) आह्लाद (यदग्रेविषमिव परिणामेमृतोपमम् । तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तामात्मबुद्धि प्रसादजम् ।) प्रद होता तभी यह आशीर्वाद होता। परन्तु यह सजातीय वा सम जातीय अह्लाद प्रद नहीं होकर विजातीय आह्लाद प्रद है। अतः यह आशीर्वाद न होकर सर्पदन्त है, अमृत न होकर विष है अथवा अमृत कलश न होकर विष कलश (मुख मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे ।।) है, ऐसा इसके उक्त स्ववाक्य से ही सिद्ध होता है तथा इसके ही वाक्य–"अन्वेपण की यथार्थ प्रक्रिया का ज्ञान नहीं होने के कारण। अमृत कलश के वदले विष कलश ही प्राप्त हो जाते हैं, अमरता के बदले मृत्यु एवं आनन्द सिन्धु के बदले दुःख सागर प्राप्त होते हैं" से सम्पुष्ट होता है।

(२) इस अमृत कलश का अन्वेषण ही संदिग्ध वाक्य एवं अनिश्चित अटकल के आधार पर होने से उपरोक्त वाक्यों के अनुसार ही यह अमृत कलश के बदले विष कलश की प्राप्ति स्वतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्ध है। लिखा गया है—"अमृत अन्वेषण के इस अनादि यात्रा में तो एकाकी ही रहे होंगे इस क्रम से सदा ही असफल होते हुये हमने मिलकर अमृत कलश को खोज़ना शुरु किया होगा।': इस सन्दिग्ध भूत कालिक क्रिया (रहे होंगे, किया होगा) से ही सिद्ध है कि लेखक को न तो यथार्थता का ज्ञान है और न किसी बात का निश्चय। अतः अनिश्चय वाचक सन्दिग्ध बात को तथ्य मानकर अन्वेषण का अटकल कर रहे हैं। परन्तु यह अन्वेषण की यथार्थ प्रकिया नहीं होने से लक्ष्य के विपरीत अमृत कलश के बदले विष कलश की प्राप्ति करायेगा ही 'संशयात्मा विनश्यति। पृष्ठ ४ में उधृत स्कन्दपुराण वाक्य से ही यह अटकल खण्डित है कि देवता और दैत्य सभों ने मिलकर अमृत कलश की प्राप्ति के लिये समुद्र मन्थन किये तो भी देवता या दैत्य पहले एकाकी अमृत कलश के अन्वेषण करने नहीं गया और न असफल होने पर मिलकर प्रयास किये। अतः आचार्याशीः का आरम्भ ही भ्रान्त अटकलपर है और विपरीत फलोत्पादक है।

(३) 'विघ्नविध्वंस कामो मङ्गल माचरेत्" वाक्य स्वतः प्रमाण हैं। क्योंकि 'विघ्न' और 'मङ्गल' परस्पर व्याघातक और विपरीत हैं एतावता विघ्न के विरुद्ध मङ्गल का प्रयोग करने से विघ्नध्वंस स्वतः सिद्ध है। अतः विघ्नध्वंस कामो मङ्गमाचरेत्' वाक्य स्वतः प्रमाण हैं। परन्तु 'अमृत कामैः कुम्भ पर्वाणि आश्रयणीयानि' वाक्य ऐसा नहीं है। पुनः नतो नया श्रुति वाक्य गढा जा सकता है और न श्रुति वाक्यों में एक मात्रा का परिवर्तन किया जा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता है, परन्तु लेखक यहां नया श्रुति वाक्य गढते हुये लिखते हैं—'श्रुति का आकार इस प्रकार होगा—'अमृत कामै: कुम्भपर्वाणि आश्रयणीयानि'' जो महा अनर्थ है। ऊन्हें "स्वर्ग कामो यजेत" के समान कोई श्रुतिवाक्य उपस्थापित करते हुये लिखना चाहिए था कि यह श्रुति वाक्य है'यह श्रुति का आकार इस प्रकार होगा।' वे श्रुतिवाक्य बनाने वाले होते कौन हैं। कोई 'अग्निमीडे पुरोहितम्' के स्थान पर 'वह्नि मीडे पुरोहितम्' नहीं कर सकता। फिर श्रुति वाक्य गढ़ना तो वहुत दूर की वात है। इस प्रकार यह आचार्याशी: श्रुति पर आघात होने के कारण सर्पदन्त है, आशीर्वाद नहीं।

(४) "वेदों में कुम्भ मेला का प्रेरक वाक्य प्रत्यक्षत: समुपलब्ध नहीं होता है।" यह कथन भी भ्रान्त है। मिलने के स्थान को मेला कहते हैं। वेद में इकट्ठे होने का उपदेश है—'संगच्छध्वं संवदध्वम्—ऋ.'। इस प्रकार कुम्भ मेला के प्रेरक वाक्य वेद में हैं।

(५) आचार्याशी: के वाक्य स्वत: असङ्गतिपूर्ण एवं सान्दिग्ध एता वता भ्रान्त है—"कुम्भमेला का समायोजन केवल अमृतपान की अभिलाषा से ही होता है, ऐसा कहना सर्वथा बुद्धि संगत नहीं है, क्योंकि देवताओं एवं दानवों की लडाई में अमृत कलश से अमृत के अत्यन्त स्वल्प विन्दु ही गिरे होगें, मिट्टी ही में मिल गये होंगे जिनका पान सम्भव नहीं' मेला तो अमृत विजय लीला का संस्मरण दैवी सम्पत्ति व देवताओं का समर्थन एवं अमृतत्व की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परम महत्ता का ज्ञापन है।, अमृत कलश से गिरे हुये अमृत विन्दुओं के माध्यमसे अमृतत्त्व की प्राप्ति भी सम्भव है तथा साधकों ने प्राप्त भी किया होगा।" इस व्याघातपूर्ण एवं असम्बद्ध वाक्यों से ही इसकी अप्रमाणिकता सिद्ध है। सर्वप्रथम प्रतिज्ञा वाक्यकुम्भ मेला का समायोजन केवल अमृतपान की अभिलाषा से ही होता है, ऐसा कहना सर्वथा बुद्धि सङ्गत नहीं है" की सिद्धि में जो हेतु वाक्य--"क्योंकि देवताओं एवं दानवों की लडाई में अमृत कलश से अमृत के अत्यन्त स्वल्प विन्दु ही गिरे होंगे, मिट्टी में ही मिल गये होंगे जिनका पान सम्भव नहीं" दिया गया है वह स्वतः 'गिरे होंगे, मिल गये होंगे' सन्दिग्धभूत कालिक एतावता सन्दिग्ध वाक्य है तथा साध्य कोटि के हैं। अतः इस साध्यसम (साध्याऽविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः--न्या॰ सू.) या असिद्ध हेतु से उक्त प्रतिज्ञा वाक्य रूप साध्य की सिद्धि नहीं की जा सकती। "स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयति?" पुनः प्रतिज्ञा वाक्य में 'केवल' शब्द के प्रयोग से इसे अल्पदेशव्यापी (व्याप्य) वना देने से इसी प्रकार अन्यव्यवच्छेदार्थक 'ही' के प्रयोग से व्याप्य वना देने से इसके "अमृतपान" का निषेध नहीं बनता। इसीप्रकार 'सर्वथा' पद के प्रयोग से बुद्धि सङ्गतत्व का पूर्ण निषेध नहीं बनता! इस प्रकार यह प्रतिज्ञा वाक्य ही असम्बद्ध है। फिर हेतु वाक्य 'स्वल्प विन्दु' एवं मिट्टि में मिलने' से 'अमृतपान' का पूर्ण निषेध होता है, तव प्रतिज्ञा वाक्य में अमृत पान' के साथ 'केवल'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषण जो आंशिक निषेध का प्रतिपादक है, हेतु वाक्य के विरुद्ध है। अतः यह हेतु (साध्य विपरीत साधको विरुद्धः) है। फिर इस हेतु (स्वल्प बिन्दु, मिट्टी में मिलान) के विरुद्ध—"अमृत कलश से गिरे हुये अमृतत्त्व की प्राप्ति भी सम्भव है तथा साधकों ने प्राप्त किया होगा" वाक्य उक्त हेतु का व्याघातक है एवं इसमें प्रयुक्त सन्दिग्ध भूतकालिक क्रिया 'होगा' इसको भी साध्य कोटि में घसीट ले जाता है। अतः आचार्याशीः के उपरोक्त वाक्य असम्बद्ध, सन्दिग्ध, व्याघातक और भानुमति का पिटारा मात्र होने से भ्रान्त्योत्पादक एतावता सर्पदन्त है, आशीर्वाद नहीं पुनः उनकी यह कल्पना ही भ्रान्त है कि लोग वहां किसी कलश में से अमृत पीने जाते हैं। कुम्भमेला कोई सुधालय या ससुराल नहीं है। वहां लोग अमृत पीने नहीं प्रत्युत 'तान्येव यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते' लेखक द्वारा उधृत वचन के अनुसार ही 'सोऽमृतत्वाय कल्पते।गी.२।१५, 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च। शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च गी.१४. २७।। की प्राप्ति के लिये जाते हैं, कुछ अन्य प्रयोजनों से भी जाते हैं, परन्तु कलश से निकाल कर प्राकृतिक समुद्र से निर्गत अमृत रस को पीने कोई भी नहीं जाता हैं।

(५) आगे लिखते है—"समुद्र मन्थन तो देवताओं एवं दानवों ने किया था तभी तो अमृत के पूर्व विष भी प्रकट हुआ परन्तु मेला में तो मन्थन ज्ञानी एवं भक्त ही करते हैं। अतएव विष के प्राकट्य का सर्वथा शमन कर देते हैं मन्थन कर्ताओं को लडाते नहीं" परन्तु लेखक का यह कथन सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है। अमृत और विष उपदान समुद्र में वर्तमान द्रव्य होने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण उत्पन्न हुये न कि मन्थन कर्ता देवता और दानव निमित्त कारणों से । कार्य अपने उपादान कारण में पूर्व से अव्यक्तरूप में रहता है। जिसका अस्तित्व ही नहीं, उसका कभी भी प्रादुर्भाव नहीं हो सकता । बालु में तेल का अभाव है उससे तेल नहीं निकाला जा सकता तेल के लिये तेलहन को ही खोजा जाता है, सभ से सभी कुछ सम्भव नहीं है, निर्जीव से सजीव पैदा नहीं होता चौकी से वच्चा पैदा नहीं होता, कारण अपनी क्षमता के अनुरूप ही कार्य उत्पन्न करता है, तेलहन से गुड उत्पन्न नहीं होता । इसी को सत्कार्यवाद–'असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भावाभावात् । शक्यस्य शक्यकरणात् कारणाभावाच्च सत्कार्यम् ।। सां. का- ९।। में कहा गया है । अत: यह कहना विवेकपूर्ण नहीं है कि दानवों के मन्थन के कारण विष एवं देवताओं के मन्थन के कारण अमृत प्रकट हुआ । इसी प्रकार यह भी कहना सत्य नहीं है कि मेला में मन्थन ज्ञानी और भक्त ही करते हैं । यदि ऐसा होता तो वहां लडाई झगडा क्यों होती, सरकार को दण्डाधिकारी और आरक्षी बल क्यों रखना पडता । कटु सत्य तो यह हैकि मेला में मन्थन पदलोलुप, भोजनभट्ट, और पाखण्डी लोग भी करते हैं एवं ज्ञान के स्थान पर अज्ञान, विपरीत ज्ञान आदि फैलाकर अपनी व्यक्ति पूजा कराने का आडम्बर और ढोंग करते हैं, अपने को अपने सम्प्रदाय और पूर्वाचार्यों से भी ऊपर मानने वाले परम्परा गत अविच्छिन्न रूप से सर्वमान्य सिद्धान्त को झूठा और अपनी थोथी वाणी को सिद्धान्त बताते हैं । वे स्वयं ही अपने सम्प्रदाय, अपनी आचार्य परम्परा, अपने ग्रन्थ, अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धान्त से व्यक्तिगत स्वार्थ से लडते हैं, गुण्डों बदमांसों के बल पर अविकारी आचार्य को बलपूर्वक पदच्युत कर महा-पुरुष बनकर कुम्भ में बगुला भक्त बनकर रोटी, कपडा और द्रव्य वितरण कर अपनी ख्याति के लिये सत्याचाराभास से लडते हैं, उन्हें कोई लडाता नहीं। जैसे एक राजा दूसरे राजा से अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर लडता है। उसी प्रकार ये कुम्भ के मैदान में लडाई कर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिये वहाँ जाते हैं। उन्हें लडायेगा कौन। वे स्वयं अपने स्वार्थ सिद्ध के लिए प्रलोभन देकर लडाते हैं। इस प्रकार यह लड़ाई प्रकरण आशीर्वाद नहीं, प्रत्युत सर्पदन्त है।

(६) आगे परम्परागत रूप चले आ रहे शिष्टाचार रूप शाहीस्नान पर सर्प दंश एवं विष वमन करते हुए लिखा गया है—"कुम्भ स्नान जो परम कल्याण प्रद है, उसे शाही स्नान बना दिया गया है। स्नान के धर्म आत्मकल्याण को शाही रूप प्रदान कर पूर्ण अवैदिकत्व तथा अमुमुक्षुत्व का सम्पादन एवं पूजा की मर्यादा का उलंघन है। पूज्य के पास पूजन क्रम में मुमुक्षु को अत्यन्त सादगीपूर्ण एवं विनीत वेष में जाना चाहिये। परन्तु वे लोग भी शाही रूप बनाने का जोर-शोर से प्रयास करते हैं, जो भिक्षुक, संन्यासी व परोपजीवी अर्थात् निर्वाह के लिये दूसरों पर पूर्णतः आधारित हैं, उनका यह शाही प्रदर्शन निश्चितरूप से व्यक्ति समाज धर्म तथा अध्या-त्म का सम्पूर्णरीति से घातक है तथा अनुपम भी है। हम सभी अमृत पिपासुओं को शाही के आसक्तों से सावधान रहते हुए अमृत कलश को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। हम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोगों को शीघ्रता एवं सावधानी से इस शाही, दम्भी, विद्वेषी, लोकार्थी एवं धनार्थी के स्वरूप का परित्याग कर वस्तुतः अमृत पिपासु स्वरूप को धारण करना है तभी मानव जीवन सनातन धर्म एवं कुम्भमेला पूर्णतः सार्थक होंगे तथा अपना अस्तित्व भी बचा सकेंगे।" इस लम्बे चौडे प्रवचन को पढकर बचपन की पढी कहानी खट्टे अंगूर कौन खाय' एवं अंग्रेजी की कहावत–(ग्रेप्स आर सावर) का स्मरण हो रहा है। गत प्रयाग महाकुम्भ में जो शाही स्नान के पिपासु थे वे वहां शाही स्नान नहीं कर सकने के कारण अब शाही स्नान के आलोचक बन रहे हैं, शाही स्नान के प्रति कोयल की बोली बोलनेवाले आज उसके प्रति काक की बोली बोल रहे हैं। यह सुनकर लोगों को आश्चर्य अवश्य होगा। वे इसे अवैदिक कह रहे हैं, परन्तु स्वयं लिखे है–शिष्टों के द्वारा सम्पादित होने वाले जिन कृत्यों का वेदों में प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता उनके लिए ऐसा समझना चाहिए कि उनकी प्रतिपादिका शाखायें लुप्त हो गयी हैं।' मनुजी ने भी कहा है "वेदोऽखिलोधर्म मूलं स्मृतिंशीले च तद्विदाम। आचारश्चैवसाधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम॥" एवं और भी कहा गया है–"यस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य क्रमागतः। श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते॥" "देशाचारस्तवदादौ विचिन्त्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या।" "येषु स्थानेषु यच्छौचं धर्माचारश्च यादृशः। तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः। इत्यादि॥" अतः परम्परागत रूप शिष्टाचार रूप में क्रमागत आरहे हैं इस सदाचार को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलौदिक कहनेवाले मुख को शोभा नहीं देती। शाही शब्द का अर्थ–शा "शास्त्रं शा च निगद्यते–मे०', 'शासु अनुशिष्टौ, शा हौ ६।४।२५ ही (ही हेतौ विस्मयेऽपि च" मे० अनुशासित विस्मय पूर्ण है। इसको राजानुशासन मानकर कुछ लोग राजकीय अर्थ करते हैं तो कुछ लोग शास्त्रानुशासन वा शिष्ट पुरुषानुशासन मानकर शिष्टाचार अर्थ करते हैं। सन्तों का यह शाही स्नान वही परम्परागत शिष्टाचार स्नान का वाचक है। फारसी भाषमें भी शाह शब्द के राजा और फकीर (सन्त) दोनों अर्थ होते हैं। अतः उस भाषा के अनुसार भी शाही स्नान का अर्थ सन्त स्नान है। यदि मध्य दीपिका न्याय से शाही शब्द को राजकीय अर्थ का भी वाचक मानलें तो समन्वित अर्थ होगा 'राजृ दीप्तौ' चमत्कृत स्नान सजधज के स्नान पुनः लेखक ने स्वयं लिखा है कि "मेला तो अमृत विजय लीला का संस्मरण दैवी सम्पत्ति व देवताओं का समर्थन एवं अमृतत्त्व की महत्ता का ज्ञापन हैं।' इस हेतु से भी विजय लीलारूप शाही स्नान निर्दुष्ट है विजय रूप या लीलारूप होने के कारण। फिर स्नान कार्य में आये शम्भूदल द्वारा प्रत्यवाय के निवारणार्थ शस्त्रसुसज्जित होकर शाही स्नान ऐतिहासिक आवश्यकता थी और आज भी है। अतः शाही स्नान की आलोचना करना निरावचकना है। लेखक जी ने इस शाही स्नान को जिस असादगी कारण से दम्भी, विद्वेषी, लोकार्थी एवं धनार्थी स्वरूप वताया है, उसी असादगी कारण से क्या उनके रजत सिंहासनासिन, छत्र, चवर, छडी, छाता से सुसज्जित रूप भी क्या दम्भी, विद्वेषी, लोकार्थी, एवं धनार्थी स्वरूप सिद्ध नही होता? वे जिन हेतुओं से अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर आरोपित दोषों का निराकरण करेंगे, उन्हीं हेतुओ से शाही स्नान पर आरोपित इस दोष का भी स्वत: निराकरण हो जायेगा और यदि अपने पर आरोपित दोषों का निराकरण नहीं करते हैं, तो स्वयं दुष्ट सिद्ध होते हैं। अत: उभयत: पाशारज्जु है इसमें अवैदिकत्व और अमुमुक्षुत्व का आरोप करने पर वह स्वयं उनमें ही घटित हो जाता है। पुन: यह पूजा की मर्यादा का उलंधन कैसे है? 'नृत्य गीतादिकं चरेत्' नाचते गाते सजधज कर पूजा करने जाने की तो विधि ही है। पूजनोत्सव कहा ही जाता है। यह सब पूजा का अंग है। पूजा के सादगी से जाने का नियम नहीं है पाट-उत्सव है। पूजा के सादगी से जाने का नियम नहीं है पाट-म्बर वस्त्र धारण कर जाने का नियम है। प्रश्न पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण करने का है, सादा या रंगीन वस्त्र का नहीं। लगता है लेखकजी ने कभी स्त्रियों पुरुषों, बच्चों आदि को सुसज्जित होकर बाजा गाजा के साथ गंगा पूजन करते जाते कभी देखा ही नहीं हो। स्नान का धर्म मल नाश है और गंगादि पवित्र तीर्थों में स्नान करने का फल पाप नाश भी। कोई मल नाश के उद्देश्य से भी गंगा में स्नान करता है तो उसका शरीर के मल का नाश तो होगा ही साथ ही उसके पापों का भी नाश अग्नि स्पर्शवत् स्वत: हो ही जायगा। अत: शाही स्नान का कुछ भी उद्देश्य होने से उससे पाप नाश और आत्मकल्याण स्वत: होगा ही। अत: उक्त मिथ्या प्रवचन आशीर्वाद नहीं प्रत्युत विष वमन करने वाला सर्पदन्त है।

(७) लेखक अन्तिम कण्डिका में लिखते हैं—"उज्जैन कुम्भ के परम पावन प्रसङ्ग पर हम सभी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी के चरणों में नतमस्तक हैं। इस वाक्य के वाक्य खण्ड—'हम सभी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी भग-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वदाचार्यजी के' में प्रयुक्त 'जगद्गुरु रामानन्दाचार्य' शब्द का अन्वय 'हम सभी' शब्द के साथ है या 'स्वामी भगवदाचार्यजी शब्द के साथ ? यदि 'हम सभी' शब्द के साथ है, तो सर्व प्रथम तो आप सभी ज.गु. रामानन्दाचार्य बन जाते हैं और स्वामीजी केवल 'स्वामी भगवदाचार्यजी' ही बन जाते हैं, ज.गु. रामानन्दाचार्य नहीं ? दूसरे 'हम सभी ज.गु. रामानन्दाचार्य' में आपके अतिरिक्त आप किन किन को ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्य रूप में प्रतिपादित किये हैं ? इसका उत्तर करें । यदि वे 'ज.गु. रामानन्दाचार्य पद का अन्वय "स्वामी भगवदाचार्यजी के साथ मानते हैं "हम सभी के साथ नहीं, तो स्वामी जी तो ज. गु. श्रीरामानन्दचार्य होते हैं, आप (लेखक) अपने ही मुख से ज.गु. रामानन्दचार्य नहीं सिद्ध होते । अतः उक्त वाक्य उभयतः इनका घातक है ।

(८) लेखक का अन्त इन विषवमनात्मक शब्दों में हुआ है–अब उनके तथा सम्प्रदाय के परम विद्वेषियों, घातकों एवं कलंकों के चरणों के पुजारी एवं समर्थक बने हुए हैं" परन्तु ये विद्वेषी, घातक एवं कलंक कोन एवं क्या है तथा इनके पुजारी एवं समर्थक कौन बने हुए हैं–इसका उद्घाटन इस लेख में नहीं है । कलंक तो सम्प्रदाय का होकर और सम्प्रदाय के अन्तर्गत रहकर सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा, सिद्धान्त, परम्परागत शिष्टाचार और आचार्यो को बलात् पीठों से उठा बाहर कर उस पर आसीन होने वाले पदलोलुप, स्वार्थी, दम्भी आदि सम्प्रदाय द्रोही दुष्ट पुरुष ही हैं । विद्वेषी और घातक वही कहे जायेंगे जो उनके विरुद्ध लिखे हों । अब ये कोन हैं, इसका उल्लेख लेख में नहीं है । अतः स्पष्ट वक्ता निर्भीक व्यक्ति को इनका नाम बताने में डरना नहीं चाहिए । इन लक्षणों की आइना में सभी अपनी अपनी तस्वीर देखें । तेरा दिल दर्पण कहलाये ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसंग में पता चला कि वे उनसे कह रहे थे कि यदि पूरा सम्प्रदाय मुझे सर्वमान्य जगद्गुरु के रूप में स्वीकार करे तो हम इसका नाम रामानन्दवेदांत रखेंगे, अन्यथा अनिर्वचनीयाद्वैत वेदांत रखेंगे। ऐसे महत्त्वाकांक्षी, स्वार्थी लोगों की बातों का क्या मूल्य है। मिष्टान्न के आधार पर कब तक जयकार चलेगा। आज श्रीरामानन्द सम्प्रदाय सामाजिक रोग से अछूता नहीं रहा, जिसमें गुण्डई, पैसा, पद, प्रतिष्ठा, अहंकार का चक्कर है। उसी से यह सारी परेशानी पैदा हो रही है। तथाकथित स्वयंभू जगद्गुरु लोग दुर्भाग्य से हमारी उपासना पद्धति, साहित्य इतिहास से संपूर्ण अनभिज्ञ, अपरिचित, आत्मानां पण्डितं मन्यमाना: अहंकार पद प्रतिष्ठा में लड रहे हैं। सब पर अपनी बात थोपने की कोशीश कर रहे हैं। इसके लिये गुण्डई, रुपये का सहारा ले रहे हैं। दुर्भाग्य से इस सम्प्रदाय के संत अत्यधिक सीधे सरल होने के कारण बात समझ भी नहीं सकते। कुछ लोग स्वार्थ लोभ लालच में उनके साथ जूड जाते हैं। इस स्थिति में संघ उन सब सम्प्रदाय विरोधी तत्त्वों से हर मोर्चो पर लड रहा है। आज भी अधिक संख्यक सम्प्रदाय स्वाभिमानी लोग संघ के साथ हैं। इत्यादि ॥ इसी प्रकार सं. कर्मवीर म. म. स्वामी रामकुमार दासजी (खाकीं बापू) अपने पत्र दि० ३. ७।९२ में लिखते हैं–"स्वामी रामनरेशाचार्यजी के अमृत कलश को भी पढा। उसमें ज. गु. स्वामी भगवदाचार्यजी के प्रशंसा के द्वारा उनके अनुयायियों को अपनी ओर खीचने की चालाकी के अलावा और कुछ नहीं है। तो भी विजय राघवजी के लेख में १४वी पीढी आदि की बातें अब मिथ्या है ऐसा दम्भ पूर्ण लिखा गया है। स्वा. रामभद्राचार्य भगवान दासजी आदि का प्रपञ्च मात्र है। भलेही वे टांग ऊची रखे परन्तु आपकी लेखनी तथा पूज्यपाद स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य, पूज्यपाद स्वामी हर्याचार्यजी स्वामी रामावतारदासजी आदि महापुरुषों का यह विजय है, ऐसा मै मानता हूं"

इसप्रकार पूज्य लोगों के समीक्षा विषयक विचार हैं। श्री उ.प्रोध्याजी के मणिपर्वत के मानस तत्त्वान्वेषीजी के शिष्य पं. श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणीजी ने अपने लम्बे पत्र में मेरी बडी प्रशंसा की है, जिसे लिखना उचित नहीं है। सिद्धांत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्जीकरण संख्या जी. एम् सी. ४५१

चन्द्रिका, रामानन्द दर्शन समीक्षा एवं उनकी समीक्षा परीक्षा के विषयक में उन्होंने लिखा है-'वास्तव में आजकल विद्वानों में, खासकर जिन्हें तथाकथित यश अर्जित करना अभीष्ट है एक परम्परा चल पडी है किन्हीं भी दार्शनिक विवेचन को या प्रथमाचार्यों के मूल सिद्धांतों को थोडा परिवर्तन करके प्रस्तुत करना। वे लोग यह समझते हैं कि छिद्रान्वेषणात्मक दृष्टि रखकर नये ढंग से उसे विकृत करते रहते हैं। समीक्षा जो आपने की है वह अद्वितीय है। वास्तव में इस प्रकार विद्वत्तापूर्ण श्रीवैष्णव सिद्धांतानुसार समीक्षा लिखना किसी अन्य विद्वान् के द्वारा सम्भव नहीं है।........उन दोनों ग्रन्थों के एक एक वाक्य का खण्डन करके आपने यह सिद्ध कर दिया है कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में मनमाना अपसिद्धांत लिखकर कोई भी अछूता नहीं बच सकता है।......मैं ज.गु. रा. स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराजसे उज्जैन में मिला था। प्रथमबार के भेंट से ही काफी आत्मीयता का आभास हुआ। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बहुत से ग्रन्थ भी मुझे दिलाया स्वामीजी अत्यन्त सौम्य स्वभाव के लग रहे थे इसप्रकार के इतने उच्च कोटि के विद्वान् आचार्य उपेक्षित हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का भविष्य क्या होगा। श्रीराम भद्राचार्यजी द्वारा लिखित श्रीरामानन्द सिद्धांत चन्द्रिका तथा श्री भगवान्दासजी द्वारा लिखित रामानन्द दर्शन समीक्षा का खण्डन वह भी शास्त्रोक्त पद्धति से देखकर पढकर पूर्ण विश्वास होगया कि आप एक विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हैं। आपके ऊपर निश्चय ही आपके श्रीगुरुदेव महाराज की अपार कृपा उतरी है। श्रीप्रेमनीधिजी महाराज ने भी बहुत से श्रेष्ठ ग्रन्थों का निर्माण किया है वे एक अच्छे सुलझे हुये विचारधारा के विशिष्ट संत थे। इत्यादि।"

श्रीरामानन्दाचार्यपीठश्रीशेषमठके धर्मप्रचारविभागसेधर्मप्रचारार्थप्रकाशित

मुद्रक-श्रीआनन्दभाष्यमुद्रणालय

आचार्यपीठ

श्रीकोसलेन्द्रमठ पो. पालड़ी, अहमदावाद-३८०००

पा. सं. प्रति श्री............

३९७ पुस्तकालय वाल्मीकि अध्ययन संस्थान काठमाण्डू नेपाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu